ग्राम-सेवा

सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

प्रकाशकीय

स्वतंत्र भारत के सामने सबसे मुख्य समस्या उसके नवनिर्माण की है, और चूंकि भारत गांवों में बसता है, इसलिए बिना गांवों को उन्नत किये देश का उठना असंभव है।

प्रस्तुत पुस्तक में गांधीजी ने बताया है कि गांवों की समस्याएं क्या हैं और उन्हें किस प्रकार हल किया जा सकता है। उन्होंने नगर के कार्यकर्त्ताओं से अपेक्षा रक्खी है कि वे गांवों में जायं और वहां के निवासियों की भांति अपना रहन-सहन रखकर उनके बीच काम करें।

गांवों की समस्याएं आज भी बहुत-कुछ ज्यों-की-त्यों बनी हुई हैं और उस दृष्टि से इस पुस्तक का मूल्य आज भी उतना ही है, जितना पहले था।

पुस्तक का यह नवां संस्करण है। इससे पता चलता है कि पुस्तक कितनी लोकप्रिय एवं उपयोगी है।

—मंत्री

विषय-सूची

ग्राम-सेवा

: १ :

हमारे गांव

एक युवक ने, जो एक गांव में रहकर अपना निर्वाह करने की कोशिश कर रहा है, मुझे एक दुःखजनक पत्र भेजा है। वह अंग्रेजी ज्यादा नहीं जानता। इसलिए उसने जो पत्र भेजा है, उसे संक्षिप्त रूप में ही देता हूं—

"पंद्रह साल एक कस्बे में बिताकर, तीन साल पहले, जबकि बीस वर्ष का था, मैंने इस ग्राम-जीवन में प्रवेश किया। अपनी घरेलू परिस्थितियों के कारण मैं कालेज की शिक्षा प्राप्त नहीं कर सका। अतः आपने ग्राम-पुनर्रचना का जो काम शुरू किया, उसने मुझे ग्राम-जीवन ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहन दिया। मेरे पास कुछ जमीन है। मेरे गांव की आबादी कोई २५०० की है। लेकिन इस गांव के निकट संपर्क में आने के बाद कोई तीन-चौथाई से भी ज्यादा लोगों में मुझे नीचे लिखी बातें मिलती हैं :

१. दलबंदी और लड़ाई-झगड़े २. ईर्ष्या-द्वेष ३. निरक्षरता ४. शरारत ५. फूट ६. लापरवाही

७. बेढंगापन ८. पुरानी निरर्थक रूढ़ियों से चिपके रहना ९. बेरहमी ।

यह स्थान दूर एक कोने में है, जहां आमतौर पर कोई आता-जाता नहीं है । कोई बड़ा आदमी तो ऐसे दूर के गांवों में कभी नहीं गया । लेकिन उन्नति के लिए बड़े आदमियों की संगति आवश्यक है, इसलिए इस गांव में रहते हुए मैं घबराता हूं । तो क्या इस गांव को मैं छोड़ दूं ? आज मुझे क्या सलाह और आदेश देते हैं ?

इसमें शक नहीं कि इस नवयुवक की ग्राम-जीवन की खींची हुई तस्वीर अतिशयोक्तिपूर्ण है; पर उसने जो कुछ कहा है, उसे आमतौर पर माना जा सकता है । इस बुरी हालत की वजह मालूम करने के लिए दूर जाने की जरूरत नहीं । क्योंकि जिन्हें शिक्षा पाने का सौभाग्य मिला है, उन्होंने गांवों की बहुत उपेक्षा की है; उन्होंने अपने लिए शहरी जीवन चुना है । ग्राम-आंदोलन तो इसी बात का एक प्रयत्न है कि जो लोग सेवा की भावना रखते हैं, उन्हें गांव में बसकर ग्रामवासियों की सेवा में लग जाने के लिए प्रेरित करके, गांवों के साथ स्वास्थ्यप्रद संबंध स्थापित कराया जाय । पत्र-प्रेषक युवक ने जो बुराइयां देखीं, वे ग्राम-जीवन में बद्धमूल नहीं हैं । फिर, जो लोग सेवा-भाव से गांवों में बसे हैं, वे अपने सामने कठिनाइयों को देखकर हतोत्साह नहीं होते । वे तो इस बात को जानकर ही वहां जाते हैं कि अनेक कठिनाइयों में, यहांतक कि गांववालों

की उदासीनता होते हुए भी, उन्हें वहां काम करना है। जिन्हें अपने कार्य और स्वयं अपने-आपमें विश्वास है, वही गांववालों की सेवा करके उनके जीवन पर कुछ असर डाल सकेंगे। सच्चा जीवन बिताना खुद एक ऐसा सबक है कि जिसका आस-पास के लोगों पर जरूर असर पड़ता है। लेकिन इस नवयुवक के साथ कठिनाई शायद यह है कि वह किसी सेवा-भाव से नहीं, बल्कि सिर्फ अपने निर्वाह के लिए रोजी कमाने की गरज से गांव में गया है। मैं मानता हूं कि सिर्फ कमाई के लिए ही वहां जानेवाले के लिए ग्राम-जीवन में कोई आकर्षण नहीं है। सेवा-भाव के बिना जो लोग गांवों में जाते हैं, उनके लिए तो नवीनता नष्ट होते ही ग्राम-जीवन नीरस हो जायगा। अतः गांवों में जानेवाले किसी युवक को कठिनाइयों से घबराकर तो अपना रास्ता कभी नहीं छोड़ना चाहिए। सब्र के साथ प्रयत्न जारी रखा जाय तो मालूम पड़ेगा कि गांववाले भी शहरवालों से बहुत भिन्न नहीं हैं और उनपर दया करने व ध्यान देने से वे भी साथ देंगे। निस्संदेह, गांव में देश के बड़े आदमियों के संपर्क का अवसर नहीं मिलता। हां ग्राम-मनोवृत्ति की वृद्धि होने पर नेताओं के लिए यह आवश्यक हो जायगा कि वे गांवों में दौरा करके उनके साथ सजीव संपर्क स्थापित करें। पर चैतन्य, रामकृष्ण, तुलसीदास, कबीर, नानक, दादू, तुकाराम, तिरुवल्लुवर-जैसे संतों के ग्रंथों के रूप में महान् और श्रेष्ठ जनों का सत्संग तो सबको अभी भी

प्राप्त है। कठिनाई यही है कि मन को इन स्थायी महत्व की बातों को ग्रहण करने योग्य कैसे बनाया जाय ? यदि आधुनिक विचारों का राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक साहित्य प्राप्त करने से आशय हो तो इसके लिए साहित्य मिल सकता है। लेकिन यह मैं मानता हूं कि धार्मिक साहित्य की भांति आसानी से वह साहित्य नहीं मिलता। संतों ने तो सर्वसाधारण के लिए ही लिखा और कहा है। पर आधुनिक विचारों को सर्वसाधारण के ग्रहण करने योग्य रूप में अनूदित करने का अनुराग अभी पूर्णरूप में सामने नहीं आया। समय रहते ऐसा होगा अवश्य। अतएव, इस पत्र के प्रेषक-जैसे नवयुवकों को मेरी सलाह है कि अपने प्रयत्न को छोड़ न दें, बल्कि उसमें लगे रहें और अपनी उपस्थिति से गांव को अधिक प्रिय और रहने-योग्य बनावें, लेकिन यह वे कर सकेंगे ऐसी ही सेवा के द्वारा, जो गांववालों के अनुकूल होगी। अपने ही परिश्रम से गांव को अधिक साफ-सुथरा बनाकर और अपनी योग्यतानुसार गांवों की निरक्षरता दूर करके हरेक व्यक्ति इसका आरंभ कर सकता है। यदि उनका जीवन साफ, सुघड़ और परिश्रमी होगा तो जिन गांवों में वे काम कर रहे होंगे, उनमें भी निस्संदेह उनकी छूत फैलेगी तथा गांववाले भी साफ, सुघड़ और परिश्रमी बनेंगे।

: २ :

गांवों का आरोग्य

आरोग्य की दृष्टि से गांवों की स्थिति बहुत दयनीय है। आरोग्य के आवश्यक और आसानी से मिल सकने वाले ज्ञान का अभाव हमारी गरीबी का एक सबल कारण है। यदि गांवों का आरोग्य सुधारा जा सके तो सहज ही लाखों रुपये बच सकेंगे और उतने अंश में लोगों की हालत सुधरेगी। नीरोग किसान जितना काम कर सकता है, रोगी उतना कभी नहीं कर सकता। अपने यहां मृत्यु-संख्या मामूली से अधिक होने की वजह से कम नुकसान नहीं होता है।

कहा जाता है कि इस आरोग्य-संबंधी दयनीय स्थिति का कारण हमारी आर्थिक दीनता है और यह दूर हो जाय तो आरोग्य अपने-आप सुधर जाय। सरकार को कोसने या सारा दोष उसपर डाल देने के ख़याल से भले ही यह कहा जाय, पर इस कथन में आधे से भी कम सत्य है। मेरा अनुभव-सिद्ध अभिप्राय है कि हमारे अस्वस्थ रहने में हमारी आर्थिक दीनता का हिस्सा थोड़ा है। कितना और कहां-कहां है, यह मैं जानता हूं, पर यहां मैं उसपर विचार नहीं करना चाहता।

इस लेख-माला का उद्देश्य है अपने कसूर से होने-वाले और आसानी से कौड़ियों में या मुफ़्त में रोग-निवारण के साधन और मार्ग बतलाना।

आइए, इस दृष्टि से हम अपने गांवों की स्थिति

की जांच करें। हमारे अधिकांश गांव, घूर (जहां गांव-वाले गंदगी फेंकते हैं और सारे खादपात का ढेर लगाए रहते हैं) की-सी हालत में दिखाई देते हैं। लोग जहां-तहां पाखाना फिरते हैं, घर का सहन तक नहीं बचता। फिरे हुए पाखाने की कोई फिक्र नहीं करता। गांव में कहीं रास्ते ठीक नहीं रखे जाते। कहीं ऊंची मिट्टी का ढेर है, कहीं गड्ढा हो रहा है। आदमी और पशु दोनों को चलने में तकलीफ होती है। पोखरे-पोखरियों में बर्तन मांजे-धोये जाते हैं, उनमें पशु पानी पीते हैं, नहाते हैं, पड़े रहते हैं, उन्हींमें छोटे और बड़े भी आबदस्त लेते हैं, और पास ही में पाखाना फिरना तो आम बात है। यही पानी पीने-पकाने के काम में लाया जाता है।

घर बनाने में किसी प्रकार के नियम की परवा नहीं की जाती। न पड़ोसी की सहूलियत का खयाल किया जाता है, न अपनी धूप, रोशनी और हवा का।

सहकार के अभाव के कारण गांववाले अपने आरोग्य के लिए जरूरी चीजें भी नहीं उपजाते। अपने फालतू वक्त का सदुपयोग नहीं करते या उन्हें करना आता नहीं, इससे उनकी शारीरिक और मानसिक शक्ति क्षीण रहती है।

आरोग्य के साधारण ज्ञान के अभाव के कारण रोगी होने पर गांववाले सीधे-साधे घरेलू उपायों के बदले ओझासोखा के फेर में पड़ते और जंतर-मंतर के जाल में फंसकर परेशानी मोल लेते हैं, पैसे फेंकते हैं

और बदले में रोग बढ़ा लेते हैं।

: ३ :

गांव या घूर

मांटेग्यू चेम्सफोर्ड-सुधार में कुछ हाथ रखनेवाले मि० कर्टिस ने सन् १९१८ में भारत की यात्रा करते समय हमारे गांवों के बारे में लिखते हुए कहा है :—"दूसरे देशों के गांवों के साथ हिंदुस्तान के गांवों की तुलना करते हुए मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो हिंदुस्तान के गांव घूर पर ही बसाये गये हैं।"

यह आलोचना हमें कड़ुई लग सकती है; लेकिन इसके अंदर की सचाई से कोई इंकार नहीं कर सकता। किसी गांव में चले जाइए, आपको उसका घूर सबसे पहले नजर आवेगा और वह ऊंची जमीन पर होगा। गांव के अंदर घुसने पर भी बाहर देखी हालत से कोई बहुत अंतर नहीं दिखाई देगा। वहां भी रास्तों में गंदगी मिलेगी। रास्ते और गलियों में लड़के जहां जी चाहे पाखाना फिरते हुए ही मिलेंगे। पेशाब तो बड़े-बूढ़े भी चाहे जहां करते मिलेंगे। अजनबी दर्शक घूर और गांव की बस्ती में भेद नहीं कर सकता। वास्तव में अधिक अंतर है भी नहीं।

यह टेव—आदत—चाहे जितनी पुरानी हो, फिर भी कुटेव है और उसे निकाल डालना चाहिए। मनुस्मृति आदि हिंदू-धर्मशास्त्रों में, कुरान शरीफ में, बाइबल में जरथुस्त्र के फरमानों में रास्ते, आंगन, घर, नदी,

नाले, कुंओं को गंदा न करने के संबंध में सूक्ष्म सूचनाएं हैं। लेकिन आज तो हम उनका अनादर ही कर रहे हैं और इस हद तक कि तीर्थ-क्षेत्रों में भी खासी गंदगी होती है। और, गांवों की अपेक्षा ज्यादा होती है, यह कहने में भी शायद अत्युक्ति न होगी।

हरिद्वार में गंगातट को गंदा करते हजारों स्त्री-पुरुषों को मैंने देखा है। आदमियों के बैठने के स्थानों पर यात्री पाखाना फिरते हैं, अपना मुंह वगैरह गंगा में धोते हैं और फिर वहीं पानी भरते हैं। तीर्थ-क्षेत्रों में तालाबों को इसी प्रकार गंदा करते मैंने यात्रियों को देखा है। ऐसा करने में दयाधर्म का लोप होता है और समाज-धर्म की अवगणना होती है।

ऐसी लापरवाही से हवा खराब होती है, पानी बिगड़ता है। फिर हैजा, टाइफाइड वगैरह छूत के रोगों के फैलने में क्या आश्चर्य है? हैजे की उत्पत्ति का कारण ही गंदा पानी है। टाइफाइड के बारे में भी बहुत अंशों में यही कहा जा सकता है। कहने में अत्युक्ति न होगी कि लगभग पचहत्तर प्रतिशत रोग हमारी गंदी आदतों की वजह से होते हैं।

इसलिए ग्राम-सेवक का पहला धर्म ग्रामवासी को स्वच्छता—सफाई—की तालीम देने का है। यह तालीम देने में व्याख्यान और विज्ञापनों का कम-से-कम काम है। कारण गंदगी की ऐसी जड़ जम गई है कि गांव-वाले स्वयंसेवक की बात सुनने को तैयार नहीं होते, और सुन भी ली तो उसके अनुसार करने का उत्साह

नहीं रखते। विज्ञापन बांटिएं तो पढ़ेंगे नहीं। बहुतों को तो पढ़ना आता नहीं। जिज्ञासु न होने के कारण दूसरों से भी नहीं पढ़वाते।

इसलिए स्वयंसेवक का धर्म हो जाता है पदार्थपाठ देना। गांववालों से जो कराना हो, वह खुद करके दिखावे, तभी वे करेंगे और जरूर करेंगे। इसमें किसी को शंका नहीं रखनी चाहिए। तथापि धीरज की आवश्यकता तो रहेगी ही। दो दिन हमने सेवा कर दी और फिर लोग अपने-आप करने लग जायंगे, इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए।

स्वयंसेवक को चाहिए कि गांववालों को बटोरकर पहले तो उन्हें उनका धर्म समझावे और तत्काल उनमें से स्वयंसेवक मिलें या न मिलें, उसे सफाई का काम शुरू कर देना चाहिए। उसे गांव में से फावड़ा, टोकरी, झाड़ू ये चीजें जुटा लेनी चाहिए। यह नहीं हो सकता कि वापसी का वादा पाने के बाद भी लोग ये चीजें देने से इंकार करें। इसके बाद स्वयंसेवक रास्तों की जांच करे और जहां पाखाना-पेशाब हो, वहां पहुंच जाय। पाखाने को फावड़े से अपनी ठोकरी में उठा ले और उस जगह पर मिट्टी डाल दे। जहां पेशाब हो, वहां भी फावड़े से ऊपर की गीली मिट्टी टोकरी में उठा ले और उसपर आस-पास की साफ़ धूल बिखेर दे। आस-पास कूड़ा हो तो उसे झाड़ू से बटोरकर एक किनारे उसकी कुड्ढी लगा दे और पाखाने को ठिकाने लगाने के बाद कूड़े को उसी टोकरी

में बटोरकर ठिकाने लगावे।

इस पाखाने को कहां डालने का प्रश्न महत्व रखता है। उसमें सफाई और दाम दोनों हैं। बाहर पड़ा पाखाना बदबू फैलाता है। मक्खियां उसपर बैठकर तब हमारे बदन पर आती हैं और फिर हमारे खाने पर बैठकर रोग की छूत चारों ओर फैलाती हैं। यदि हम इस क्रिया को सूक्ष्म-दर्शक यंत्र द्वारा देखें तो हम जो बहुतेरी मिठाइयां वगैरह खाते हैं, उन्हें छोड़ देना पड़े।

यह पाखाना खेतिहर के लिए सोना है। खेत में डालने से उसकी बढ़िया खाद बनती है और बड़ी अच्छी पैदावार होती है। चीनवाले इस काम में सबसे ज्यादा होशियार हैं। कहते हैं कि वे पाखाने-पेशाव को सोने की तरह बटोरकर करोड़ों रुपये बचाते हैं और साथ ही बहुतेरे रोगों से रक्षा पाते हैं।

अतएव स्वयंसेवकों को चाहिए कि किसान को यह चीज समझाकर जो किसान इजाजत दे, उसके खेत में गाड़े। यदि कोई किसान मूर्खतावश स्वयंसेवक की सफाई की अवगणना करे तो उसे घूर पर कोई जगह तलाश करके पाखाने को गाड़ना चाहिए। इसके बाद कूड़े के ढेर के पास पहुंचे।

कूड़ा दो तरह का होता है। एक तो खाद के लायक, जैसे साग-तरकारी के छिलके, अनाज, घास इत्यादि। दूसरा कूड़ा लकड़ी, पत्थर, लोहे वगैरह का। इसमें खाद के योग्य कूड़ा खेत में या जहां उसे

खाद की शक्ल में इकट्ठा करना हो, वहां डालना चाहिए। दूसरा कूड़ा जहां गड्ढे वगैरह भरने हों, वहां ले जाकर डालना चाहिए। इससे गांव साफ़ रहेगा और नंगे पैरों चलनेवाले निश्शंक होकर चल सकेंगे। कुछ दिनों की मेहनत के बाद लोग अवश्य इस चीज को समझेंगे तब स्वयं मदद करने लगेंगे और अंत में अपने-आप करने लगेंगे। हर किसान खुद अपने घर के पाखाने का अपने खेत में उपयोग करे। इससे किसीका भार दूसरे पर नहीं रहेगा और सब अपनी पैदावार में वृद्धि करने लगेंगे। रास्ते में पाखाना फिरने की आदत तो कदापि नहीं होनी चाहिए। खुले में सबके सामने पाखाना फिरना या बच्चों को भी फिराना असभ्यता है। हमें इस असभ्यता का भान तो है, क्योंकि ऐसे समय कोई दिखाई दे जाता है तो हम नीचे देखने लगते हैं। इसके लिए हर गांव में किसी स्थान पर सस्ते-से-सस्ते पाखाने बनाने चाहिएं। घूर की जगह ही इस उपयोग में लाई जा सकती है। इस बटोरे हुए खाद को किसान आपस में बांट ले सकते हैं। जबतक किसान यह बंदोबस्त न कर लें तबतक स्वयंसेवक जैसे रास्ता साफ करता है, वैसे घर को भी साफ करे। रोज सुबह गांववालों के निबटने के बाद नियत समय पर उसे घूर पर जाकर पाखाने-पेशाब को बटोरकर ऊपर बताये अनुसार उसकी व्यवस्था करनी चाहिए। यदि कोई खेत न मिल सके तो मल गाड़कर उस स्थान पर कोई निशान रखना चाहिए। इससे

रोज डालते जाने में आसानी होगी और किसानों को समझ आने पर इस इकट्ठे किये हुए खाद का वे उपयोग कर सकेंगे।

इस पाखाने को बहुत गहरे नहीं गाड़ना चाहिए। धरती के नौ इंच तक के परत में बेशुमार परोपकारी जीव बसते हैं। उतनी गहराई में जो कुछ हो, उसकी खाद बना डालने और सारे मैल को शुद्ध करना उनका काम होता है। सूर्य की किरणें भी रामदूत की भांति भारी सेवा करती हैं। इस चीज की जांच जिसे करनी हो, वह खुद-अनुभव से कर सकता है। थोड़े पाखाने को नौ इंच की गहराई में गाड़े और हफ्तेभर बाद यह जानने के लिए मिट्टी हटाकर देखे कि उसमें क्या हो रहा है। इसी पाखाने का कुछ हिस्सा तीन-चार फुट की गहराई में गाड़े और देखे कि उसका क्या हाल होता है। इससे अनुभव-ज्ञान मिलेगा। मल को छिछला गाड़ना चाहिए, पर उसपर मिट्टी पूरी ढकनी चाहिए जिससे कुत्ते न खोद सकें और बदबू न उठ सके। कुत्तों की रोक के लिए किसी जगह थोड़े कांटे भी डाले जा सकते हैं।

पाखाने को छिछला गाड़ने की बात के साथ यह बतलाना चाहिए कि पाखाने के लिए चौरस या लम्बा-चौरस बड़ा गड्ढा होना चाहिए, क्योंकि गाड़े हुए पाखाने पर फिर पाखाना नहीं डालना है और तुरंत खोलना भी नहीं है। इसलिए पहले दिन जहां गाड़ा गया है, उसके पास ही दूसरा एक चौरस गड्ढा

तैयार रहना चाहिए। उसमें की निकली हुई मिट्टी एक किनारे लगाई हुई होनी चाहिए। दूसरे दिन आकर पाखाना डालने के बाद वह मिट्टी इसपर डालकर फैला दें और जगह बराबर चौरस कर दें। इसी प्रकार छिलकों वगैरह को गाड़ना चाहिए, लेकिन दूसरी ज़गह, क्योंकि पखाने और छिलके एक साथ नहीं गाड़े जा सकते। दोनों पर जंतुओं की क्रिया एक-सी नहीं होती।

अब स्वयंसेवक की समझ में आगया होगा कि जहां वह पाखाना गाड़ता होगा, वह जगह हमेशा स्वच्छ होगी, सपाट होगी और ताजा कमाये हुए खेत-सी लगती होगी। लकड़ी, पत्थर, लोहे वगैरहवाला कूड़ा भी एक गहरे गड्ढे में गाड़ना चाहिए अथवा गांव में जो गड्ढे हों, उनमें भर देना चाहिए। यह भी रोज कर लेने का काम है, जिससे सफाई रहे।

महीने-भर इस प्रकार बिना अधिक मेहनत के ही गांव घूर सरीखा न रहकर सुंदर, स्वच्छ हो जायगा। पाठक देखेंगे कि इसमें पैसों का तो कुछ भी खर्च नहीं है। न इसमें सरकारी मदद की जरूरत है, न भारी वैज्ञानिक शक्ति की। सिर्फ प्रेमी स्वयं-सेवक की जरूरत है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि जो चीज पाखाने-पेशाब के लिए लागू है, वही गोबर और पशु के मूत्र के लिए भी है।

: ४ :

उपले या खाद ?

पिछले प्रकरण में हमने मनुष्य के मल-मूत्र का विचार किया। गाय, भैंस वगैरह जानवरों के मूत्र का हम कुछ उपयोग नहीं करते, इससे वह गंदगी बढ़ाने का ही काम करता है। गोबर का उपयोग अधिकतर उपले पाथने में होता है। यदि इसे गोबर का दुरुपयोग न कहें तो भी हल्के-से-हल्का उपयोग है, इस विषय में तो तनिक भी शंका की गुंजाइश नहीं है। 'सल्ल के लिए भैंस मारना' जैसी बात है। उपलों की आंच ठंडी मानी जाती है। हुक्के-चिलमवाले इससे काम लेते हैं। पंजाब की ओर धारणा है कि इसकी आंच से घी अच्छा बनता है। इसमें कुछ सचाई हो सकती है। पर गोबर के उपले पाथे जाते हैं, इसलिए ये सारी दलीलें दी जाती हैं। यदि गोबर का पूरा-पूरा फ़ायदा हम उठानें लगें तो हल्की आंच के लिए और बहुतेरे साधन निकल सकते हैं। यदि एक उपले की कीमत एक पाई रक्खी जाय तो गोबर का पूरा उपयोग करने से एक उपले जितने गोबर की कीमत कम-से-कम दसगुनी होगी। और यदि हम अप्रत्यक्ष हानि को भी हिसाब में रखें तो वह अनुमान से भी बाहर होगी।

गोबर का पूरा सदुपयोग उसकी खाद बनाने में ही है। कृषिशास्त्र के जानकारों का मत है कि गोबर

को जला डालने से हमारे खेतों का कस—जोर—कम हो गया है। बिना खाद के खेत को बिना घी के लड्डू-जैसा रूखा समझना चाहिए। मैं मान लेता हूं कि गोबर को जलाकर रासायनिक खाद खरीदनेवाले मूर्ख किसान हिंदुस्तान में नहीं होंगे। किसानों का यह भी खयाल है कि रासायनिक खाद की उपयोगिता गोबर की तुलना में बहुत कम है। रासायनिक खाद में जैसा फायदा है, वैसा नुकसान भी है। यद्यपि शास्त्रज्ञों के प्रयोग अभी तक पूरे नहीं हुए, तथापि उनमें से बहुतेरे यह मानते हैं कि रासायनिक खाद के उपयोग से अक्सर फसल बढ़ जाती है, हरियाली बढ़ जाती है, पर गुण की हानि होती है। कितने ही वैज्ञानिकों का मत है कि रासायनिक खाद से बीघे पीछे गेहूं ज्यादा पैदा होंगे, चमकीले होंगे और दाना मोटा होगा, पर प्राकृतिक खादवाले खेत में जो गेहूं होंगे, वे परिमाण में भले ही कम हों, पर मिठास और पौष्टिकता में उससे बहुत अच्छे होंगे और संभव है कि पूरी खोज के बाद रासायनिक खाद की उपयोगिता आज जितनी अनुमान की जाती है, उससे बहुत कम निकले।

यह हो या न हो, गोबर को खाद के काम में ही लाना चाहिए, इस बारे में दो मत नहीं हैं। इसलिए पशु के गोबर और मूत्र को खाद के लिए उपयोग करने का, तत्संबंधी संपूर्ण ज्ञान देने का काम भी ग्रामसेवक का ही होना चाहिए। उपलों के संबंध में लोगों का

भ्रम दूर करना, उसके बदले वैसा ही दूसरा ईंधन खोज निकालना, गोबर और मूत्र का खाद के रूप में फायदा भलीभांति समझना और उतना समझाने-भर का ज्ञान प्राप्त कर लेना स्वयंसेवक का कर्त्तव्य है।

यह सारा विषय जितना रसपूर्ण है, उतना ही लाभदायक है और उद्यमी संशोधक के लिए उसमें ज्ञान का भंडार है। पाठक देखेंगे कि जैसे मनुष्य के मल-मूत्र के लिए वैसे ही इस विषय में भी पैसे की या भारी विद्वत्ता की जरूरत नहीं है; पर जिस प्रेम का उल्लेख मैंने पिछले प्रकरण में किया है, उस प्रेम की आवश्यकता है।

: ५ :

गांव के रोग

लोक-शिक्षा की दृष्टि से अक्षरज्ञान की आवश्यकता को बहुत ही गौण स्थान मिलना चाहिए। या यह कहा जा सकता है कि जीवन के मुख्य अंगों के लिए अक्षरों का स्थान ही नहीं है—कोई जरूरत ही नहीं है। मोक्ष हमारी आत्यंतिक आखिरी स्थिति है। कौन इंकार करेगा कि सांसारिक और पारलौकिक मोक्ष के लिए अक्षर की जरूरत नहीं है? करोड़ों अक्षर-ज्ञान तक स्वराज्य-प्राप्ति के लिए हमें ठहरना पड़े तो स्वराज्य-प्राप्ति लगभग अशक्य-सी हो जाय। किसीने नहीं कहा है कि दुनिया के महान् शिक्षक, जैसे ईसा वगैरह को अक्षर-ज्ञान था।

इस लेख-माला की कल्पना में अक्षरज्ञान का स्थान

सबसे आखिर में है। वह साधन है, साध्य नहीं। यह बात जग-जाहिर है कि साधन की भांति उसका बहुत उपयोग है। पर काम-धंधे में पड़े हुए बड़ी उम्र के करोड़ों किसानों के लिए किस ज्ञान की अधिक आवश्यकता है, इसका विचार करते हुए हम देखते हैं कि अक्षर-ज्ञान के पहले अनेक चीजें ऐसी हैं कि जिनका ज्ञान उन्हें आज ही मिल जाना चाहिए। मि० ब्रेन की पुस्तक में से सिर्फ कुछ हिस्से का सार मैंने दिया है, उसमें से भी हमें यही चीज मिलती है।

इस दृष्टि से हमने गांवों की स्वच्छता का विचार किया। पिछले प्रकरणों में बताये सुधारों का ज्ञान किसान तुरंत पा सकता है। उस ज्ञान की प्राप्ति में जो चीज़ बाधक है, वह सच्चे शिक्षकों का अभाव और किसानों का आलस्य है।

आज हमें गांवों के मामूली रोगों का विचार करना है। सब गांव में रहनेवाले साथियों का अनुभव है कि वहां के मामूली रोग बुखार, पेचिश और फोड़े होते हैं। और भी अनेक रोग होते हैं, पर यहांपर उनपर विचार करने की जरूरत नहीं है। जिन रोगों की पीड़ा से किसान के काम में खलल पड़ता है, वे यही तीन हैं। इनका घरेलू इलाज जानना उनके लिए बहुत जरूरी है। इन रोगों की उपेक्षा करके हम करोड़ों का नुकसान उठाते हैं। इनका निवारण बहुत आसानी से हो सकता है। स्वर्गीय डाक्टर देव की देखरेख में जिस काम का आरंभ चंपारन में हुआ था, उस काम में

इन रोगों का निवारण भी था। स्वयंसेवकों के पास तीन दवाओं के सिवा चौथी दवा नहीं होती थीं। उसके बाद का अनुभव भी यही बतलाता है। पर इस लेख-माला में मैंने उसके उपाय बतलाने की योजना नहीं रखी है। वह अलग और सुंदर विषय है। यहां तो यह बतलाना है कि इन तीन रोगों का शास्त्रीय उपचार करना किसानों को सिखाना चाहिए और यह सिखाना आसान है। अगर गांव की सफाई सध जाय तो बहुतेरे रोग हों ही नहीं। चिकित्सक मात्र जानते हैं कि रोग का सर्वोत्तम इलाज तो उसे न होने देना ही है। बदहजमी न होने दें तो पेचिश बंद हो जायगी, गांव की हवा साफ रखें तो बुखार न आवेगा, गांव का पानी साफ रखने और रोज साफ पानी से नहाने से फोड़े न होंगे। तीनों में से कोई रोग हो जाय तो उसका अच्छा इलाज उपवास है और उपवास में कटि-स्नान तथा सूर्य-स्नान। इस विषय में ब्यौरेवार विचार 'आरोग्य-रक्षा' में दिये हुए हैं। हरेक स्वयंसेवक को इसे देख जाने की मेरी सलाह है।

मैं चारों ओर यह विचार पाता हूं कि गांवों में अस्पताल होने चाहिए, और नहीं तो कम-से-कम एक डिस्पेंसरी तो होनी चाहिए। मैं तो इसकी आवश्यकता बिल्कुल नहीं देखता। बहुत-से गांवों के निकट ऐसी संस्था हो तो ठीक है। पर यह चीज महत्व देने योग्य नहीं है। जहां अस्पताल होगा वहां रोगी तो टूटेंगे ही। उससे यह अनुमान नहीं निकाला जा सकता कि सात

लाख गांवों में सात लाख अस्पताल हों तो बड़ा उपकार होगा। गांव का दवाखाना, गांव की शाला होगी और गांव का पुस्तकालय भी वहीं होगा। रोग हर गांव में होते हैं, वाचनालय हर गांव में होना चाहिए, शाला तो होनी ही चाहिए। इन तीनों के लिए अलग मकानों की बात सोची जाय तो जान पड़ेगा कि सारे गांव की पूर्ति के लिए करोड़ों रुपये चाहिए और बहुत समय लग जायगा। इसलिए हमें लोक-शिक्षण और ग्राम-सुधार का विचार करते हुए अपने देश की इंतहा दर्जे की गरीबी का खयाल रखना ही पड़ेगा।

इस संबंध के विचार यदि हमने दूसरे देशों को लूटकर मालदार बनी हुई प्रजा से उधार न लिये होते तो हमारे अंदर अच्छी जागृति पैदा हुई होती और गांवों की रंगत कबकी बदल गई होती।

: ६ :

कुएं और तालाब

पूर्वकाल में वैसे ही आजकल, गांव बसानेवाले के लिए पहली बात जो देखने की है वह पानी की है। और यदि पानी की सुविधा अच्छी न हो या न हो सकती हो तो वहां गांव बसाने का खयाल तक भी नहीं किया जा सकता। दक्खिन की ओर ऐसे अन्य सब प्रकार से सुपासवाले सूखे स्थान मिलते हैं, पर जहां पानी के अभाव में गांव नहीं बसाये जा सकते। हवा आदमी की पहली जरूरत है। इसलिए इसे कहीं ढूंढ़ने नहीं

जाना पड़ता। दूसरी जरूरत पानी है। यद्यपि यह हवा की जितनी आसानी से नहीं मिल सकता, तथापि अनाज उत्पन्न करने जितनी तकलीफ इसमें नहीं उठानी पड़ती। पर जैसे हवा अथवा अनाज अच्छा होना चाहिए, वैसे ही पानी भी अच्छा होना चाहिए।

हम सबको मालूम है कि यह चीज गांववाले नहीं जानते या जानते हुए भी इस विषय में लापरवाह रहते हैं। इसलिए ग्राम-सेवक के, गांववालों को तालीम देने के कार्यक्रम में पानी के बारे की तालीम भी बड़े महत्व का विषय है और वह देने में सेवक के धीरज की कसौटी हो जा सकती है। गांववाले खुद मेहनत करके पानी साफ रखने के तरीके ढूंढ़ें या सोचेंगे, इसकी तो उम्मीद तक नहीं की जा सकती। धीरे-धीरे गांववालों को पानी साफ रखने के नियम बताने चाहिए और यह काम करते हुए उनकी मदद लेनी चाहिए। बहुत जगह तो ऐसा हो जाता है कि निज के फायदे की बात होने पर भी गांववाले मदद करने को तैयार नहीं होते। उस दशा में सेवक को स्वयं अकेले श्रम करके, यथासंभव अपने हाथ से काम पूरा करके गांववालों को शरम दिलानी चाहिए।

अब करना क्या है, इसपर कुछ विचार करना चाहिए। बहुतेरे गांवों में एक ही तालाब होता है, जिसमें पशु पानी पीते हैं, आदमी नहाते-धोते हैं, बर्तन मांजते हैं, कपड़े धोते हैं और वही पानी पीने के काम में लाते हैं। आरोग्य-शास्त्र के पंडितों ने प्रयोगों से

सिद्ध किया है कि ऐसे पानी में ज़हरीले कीड़े पैदा हो जाते हैं और इस पानी के पीने से हैज़ा आदि बीमारियां बड़ी जल्दी फैलती हैं। कुछ कोशिश करके ऐसे तालाब के चारों ओर बांध बना देना चाहिए, जिससे उसमें पशु न जा सकें। पर उनके पानी पीने की सुविधा अवश्य होनी चाहिए। इसके लिए तालाब के पास, जैसा बहुतेरे कुओं के पास होता है, हौज बना देना चाहिए। और इसमें गांव के सब आदमी एक-एक घड़ा पानी डाल दिया करें तो जरूरत भर का रोज हो जाया करे।

पानी पीनेवाले तालाब में बर्तन या कपड़े कभी नहीं धोने चाहिए। इसके दो उपाय हैं। एक तो यह कि सब लोग अपने घर पानी ले जाकर वहीं धोवें। दूसरा यह कि तालाब के पास एक टंकी रखी जाय। उसमें सब अपने हिस्से का पानी भर दें और गांववाले इस पानी का उपयोग करें। गांववालों में आपस में सहयोग और परोपकार-वृत्ति होने पर ही यह संभव है। हर आदमी यों काम न करे तो थोड़े खर्च से टंकी और हौज़ भराया जा सकता है। कपड़ा धोने की जगह पानी गिरने से कीचड़ हो जाता है। इसलिए वह हिस्सा पक्का बना लेना चाहिए। पीने के पानी भरने के बरतनों को बाहर साफ करके ही तालाब में डुबाना चाहिए और ऐसी सुविधा की हुई होनी चाहिए कि जिससे पानी भरनेवाले के पैर पानी में न पड़ें। यह एक स्थिति की बात हुई। कितने ही गांवों में एक से अधिक

तालाब होते हैं या बनाये जा सकते हैं । वहां पानी पीने का तालाब अलग ही होना चाहिए ।

बहुतेरे गांवों में कुएं होते हैं । इन कुओं का पानी साफ़ रहना चाहिए। उसके किनारे जगत होनी चाहिए और कीचड़ नहीं होना चाहिए । कुएं को बीच-बीच में झराना चाहिए। यह सब सेवक को स्वयं करके गांववालों से कराना है। यह तालीम सस्ती, सच्ची और आवश्यक है ।

: ७ :

गांव के रास्ते

गांवों का घूर कैसे हटाना और उससे तंदुरुस्ती को होनेवाले नुकसान को हटाकर उसमें से स्वर्णरूप खाद कैसे तैयार करना, गोबर के उपले बनाने के बजाय उसे खाद के काम में लाकर गांव की उपज को कैसे आसानी से बढ़ाना, तालाबों और कुओं को साफ करके आरोग्य की रक्षा कैसे करना, इन बातों पर हमने विचार किया ।

अब गांव के रास्तों की ओर हम नज़र डालें, जो बिल्कुल टेढ़े-मेढ़े होते हैं और देखने से जान पड़ता है मानो फौरन धूल फैलाकर बनाये गए हैं। उनपर चलनेवाले आदमी और गाड़ी खींचते हुए बैलों को बड़ी तकलीफ होती है । इसके कारण हमें गाड़ियां भारी और उनके पहिये भी भारी रखने पड़ते हैं कि जिससे बैल को बेकार दूना बोझा

खींचना पड़ता है। धूल से भरे रास्ते में चलने की और साथ ही भारी गाड़ी का वज़न खींचने की तकलीफ। यदि रास्ते पक्के हों तो बैल दूना माल ढो सकते हैं, गाड़ियां सस्ती हो सकती हैं और गांववालों की तंदुरुस्ती बढ़ सकती है। आज तो 'मट्ठे में मक्खन जाय और मथनेवाली फूहड़ कहलाय' वाली बात हो रही है। चौमासे में इन रास्तों में इतना कीचड़-पानी होता है कि उनमें से गाड़ी हांकना मुश्किल हो जाता है, आदमी को भी तैरकर जाना पड़ता है या कमर तक भीगकर जाना पड़ता है। इससे जो तरह-तरह के रोग फैलते हैं, वह ऊपर से।

जहां गांव घूर-सरीखा हो, जहां तालाब, कुओं की कोई परवाह न करता हो, जहां रास्ते बाबा आदम के समय के-से हों तो वहां बच्चों की क्या अच्छी हालत होगी? बालकों का बर्ताव, उनकी सभ्यता ग्राम-दशा की छाया होती है। गावों में बालकों की परवाह भी उतनी की जाती है, जितनी रास्तों की। खैर, इसे जाने दीजिए। विषयांतर हो जायगा।

तो इन रास्तों का क्या किया जाय? लोगों में सहयोग हो तो वे कौड़ी-पैसे के या कंकड़ वगैरह के थोड़े ही खर्च से पक्के रास्ते गांववाले बनाकर अपने गांव की कीमत बढ़ा सकते हैं और इस सहकारी कार्य के द्वारा छोटे-बड़े मुफ्त सच्ची तालीम पा सकते हैं। गांववालों को चाहिए कि इस काम में मजूर से कुछ काम, जहां तक संभव हो, न लें। गांव के सभी लोग,

किसान होने के कारण, स्वतंत्र रीति से अपने-अपने मजूर स्वयं ही होते हैं। जरूरत जान पड़े तो पड़ोसी मजूर की मदद लेनी चाहिए। रोज थोड़ा समय गांव-वाले रास्तों पर दें तो थोड़े ही समय में रास्ते सुधार ले सकते हैं। इसके लिए गांव की गलियों का और पास-पड़ोस के गांवों में जाने के मार्ग का नक्शा बना-कर अपनी शक्ति के अनुसार कार्यक्रम रखें और उसमें पुरुष, स्त्री और बालक सभी थोड़ा-बहुत काम दे सकते हैं। आज हमारी प्रवृत्ति केवल कौटुम्बिक जीवन तक सीमित है। ग्राम-सुधार का आधार कौटुम्बिक भावना को गांव तक पहुंचाने पर निर्भर है। गांव की शोभा से हमारी सभ्यता का अनुमान होना चाहिए। हर कुनबे का हर आदमी कुटुंब का घर जैसे साफ रखता है, वैसे ही हर कुनबे को अपने गांव के लिए काम करने को तैयार रहना चाहिए। तभी गांववाले सुखी रह सकते हैं और स्वावलंबी हो सकते हैं। आज तो हर बात के लिए सरकार पर नज़र है। सरकार घर साफ करायें, सरकार रास्ते बनायें-संवारे, सरकार कुएं-तालाब साफ रक्खे, सरकार लड़कों को पढ़ाये, सरकार बाघ-भालू से बचाये, सरकार हमारे धन-दौलत की हिफाजत करे, इस भावना ने हमें अपाहिज बना दिया है और यह बढ़ती ही जा रही है। साथ ही घर का बोझ भी बढ़ता जाता है। यदि सारे गांववाले गांव की सफ़ाई, शोभा और रक्षा के लिए अपनेको जिम्मेदार मानें

तो बहुत-सा सुधार तत्काल और बे टके-पैसे के हो जाय। इतना ही नहीं, बल्कि आवागमन की सुविधा और आरोग्य की वृद्धि के कारण गांव की आर्थिक स्थिति अच्छी हो जाय।

रास्ते की सफाई में थोड़ी अक्ल खर्च करने की जरूरत होती है। नकशे की बात तो मैं कह ही चुका हूं। सारे गांवों के रास्तों को अच्छा और पक्का बनाने के लिए एक ही तरह की सुविधा नहीं होती। कहीं कंकड़ प्राप्त हो सकते हैं तो कहीं पत्थर और ईंटों के रोड़ों से ही काम चलाना पड़ता है। रास्तों को पक्का करने में किस उपाय से काम लेना, यह तजवीजने का का काम इस लेखमाला में कल्पना किये गए स्वयंसेवक का है। ग्राम-सेवक आस-पास घूमे, इस मामले में सरकारी प्रथा में से कुछ सीखने को मिले तो सीखे। सरकार रास्ते पक्के बनाने के लिए जो उपाय करती हो, उनमें से जो लेने लायक हों, ले लिये जायं। बहुत जगह गांव के वृद्धों को इस संबंध में व्यावहारिक ज्ञान खूब होता है। उसे ढूंढ़ने और उसका उपयोग करने में ग्रामसेवक संकोच न करे। साथ ही अन्य वस्तुओं की भांति इसमें भी स्वयं मेहनत का उदाहरण सामने रखकर ग्रामसेवक को रास्ते पक्के बनाने का आरंभ करना चाहिए।

: ८ :

किसानों की दशा का सुधार

१

जबतक किसानों की दशा का शिक्षित समुदाय विचार नहीं करता, उसे जानता नहीं, अनुभव नहीं करता तबतक इस हालत में सुधार होना नामुमकिन है।

किसानों की दशा के बारे में हमारे नेताओं ने कुछ जानकारी हासिल की है, कुछ लिखा है, कौंसिलों में भी चर्चा की है, तथापि इस दशा का अनुभव न होने के कारण उसमें सच्चा सुधार नहीं हो सका।

सरकारी कर्मचारियों ने किसानों की हालत अवश्य जानी है; लेकिन उनकी स्थिति वास्तव में दयनीय है। उन्होंने हुक्काम की निगाह अर्थात् लगान वसूल करनेवाले की निगाह से किसान को देखा है। जो अधिक-से-अधिक लगान कायम करा सके, वसूल कर सके, उस हुक्काम की तरक्की होती है, उसे उपाधियां मिलती हैं और वह होशियार माना जाता है। जिस निगाह से हम किसी चीज की जांच करेंगे, उसी दृष्टि से हम उसे देख सकेंगे। इसलिए, जबतक कोई किसान की नजर से किसान की हालत की जांच नहीं करता तबतक उस हालत की हूबहू तस्वीर हमें नहीं मिल सकती।

तथापि हम इस हालत का अंदाज कुछ-कुछ कर

सकते हैं। हिंदुस्तान कंगाल है। हिंदुस्तान के लाखों लोगों को एक ही शाम खाना नसीब होता है। इसका अर्थ यही है कि हिंदुस्तान के किसान कंगाल हैं। उनमें से बहुतों को एक ही समय का खाना मिलता है। ये किसान कौन हैं? हजारों बीघे का मालिक भी किसान है, जिसके पास एक बीघा जमीन है, वह भी किसान है और जिसके पास बीघा-भर जमीन भी नहीं है, पर जो दूसरे की ताबेदारी में खेती करके बटइया पर अनाज पाता है, वह भी किसान है और आगे बढ़कर मैंने चंपारन में ऐसे भी हजारों किसान देखे हैं कि जो साहबों की और वैसे ही अपनों की सिर्फ गुलामी ही करते हैं और उसमें से ता-जिंदगी छूट नहीं सकते। इन भिन्न-भिन्न प्रकार के किसानों की असली गिनती हमें कभी नहीं मिलने की। मर्दुमशुमारी का भी ढंग होता है। किसानों की दशा जांचने के लिए मर्दुमशुमारी का खसरा बनाया जाय तो वह हमें ताज्जुब में डाल देगा और ऐसा नक्शा हमारे सामने आयगा कि शरम से हमारा सिर झुका दे। मेरा यह अनुभव है कि किसानों की दशा सुधरने की कौन कहे, दिन-दिन बिगड़ती जा रही है। मैं खेड़ा जिले (गुजरात) की बात कहता हूं, जो खुशहाल गिना जाता है। वहां भी जिन्होंने अच्छे घर बनवाये थे, वे आज उनमें सफेदी कराने की औक़ात भी नहीं रखते। उनके चेहरों पर ऐसा तेज नहीं रह गया है कि जिससे हम कुछ उम्मेद रख सकें। शरीर उचित रूप से मजबूत नहीं हैं। लड़के-बच्चे दुबले-पतले

नजर आते हैं। गांवों में प्लेग ने अड्डा जमा रखा है। दूसरे छूत के रोगों से भी लोग सताये जाते हैं। बड़े-बड़े किसान कर्ज के बोझ से दबे हुए हैं। मद्रास के गांवों में जाइये, थर्रा उठेंगे, यद्यपि मुझे जितना गहरा अनुभव खेड़ा और चंपारन का है, वैसा मद्रास का नहीं है। पर वहां के जो गांव मैंने देखे है, उनकी स्थिति से मद्रास की गरीबी का मुझे ठीक-ठीक अंदाज हो सकता है।

हिंदुस्तान के लिए यह बड़े-से-बड़ा सवाल है। इस सवाल का निपटारा कैसे हो सकता है? किसानों की हालत कैसे सुधर सकती है? इसका विचार हमें प्रितपल करना है। हिंदुस्तान शहरों में नहीं है। हिंदुस्तान गांवों में बसता है। बंबई, कलकत्ता, मद्रास वगैरह छोटे-बड़े शहरों की सारी आबादी जोड़ी जाय तो एक करोड़ से कम बैठेगी। हिंदुस्तान के अच्छे शहरों को गिनने बैठें तो एक सौ के भीतर-भीतर होंगे। पर सौ से लगायत हजार आदमियों की आबादीवाले गांवों का पार नहीं है। इसलिए यदि हम शहरों को खुशहाल कर पायं, शहरों को सुधार पायें तो भी इस प्रयत्न का असर हमारे गांवों पर बहुत कम होने वाला है। नदी किनारे के गड्ढे को साफ़ कीजिए, पर नदी के ऊपरी हिस्से में यदि मैल-मलिनता भरी ही रही तो उस सफाई का कोई असर न होगा। वही हाल शहरों का है। पर जैसे नदी के सुधार से गड्ढे आप ही सुधर जाते हैं, उसी प्रकार अगर हम अपने ग्रामीणों के जीवन में सुधार, विकास कर सकें तो बाकी का कुल

सुधार अपने-आप हो जायगा।

यह स्थिति कैसे सुधारी जा सकती है, इसे सुधारने में छोटे-बड़े सभी कैसे हाथ बंटा सकते हैं और यदि हमारे अंदर थोड़े ही सिपाही ऐसे पैदा हो जायं कि जो सत्य का ही आश्रय लेकर अपना कर्त्तव्य करते रहें तो थोड़े ही समय में हम कैसे आगे बढ़ सकते हैं, इसका विचार आगे करेंगे।

२

मि० लायोनल कर्टिस ने, जो लखनऊ-कांग्रेस के समय प्रसिद्धि में आये थे, एक जगह हिंदुस्तान की तस्वीर खींची है। वह फरमाते हैं कि हिंदुस्तान के गांव मानिंद घूर—कूड़े-कतवार के ढेर—के हैं। झोंपड़े खंडहरों का मुकाबला करते हैं। लोगों में ताकत नहीं है। मंदिर बे-ठौर-ठिकाने के होते हैं। गांवों में सफाई का नाम नहीं होता। रास्ते बे-हिसाब धूल से भरे होते हैं। साधारण दृश्य ऐसा होता है, मानो ग्राम-व्यवस्था के लिए कोई धनी-धोरी होता ही नहीं।"

इस वर्णन में विशेष अतिशयोक्ति नहीं है और किसी हद तक तो इसमें अपनी ओर से कुछ बढ़ाने की गुंजाइश ही है। सुव्यवस्थित गांव की रचना में कोई नियम होना चाहिए। गांव की गलियां चाहे-जैसी होने के बजाय किसी आकार में होनी चाहिए और हिंदुस्तान में जहां करोड़ों आदमी नंगे पैर चलनेवाले हैं, वहां रास्ते इतने अधिक साफ होने चाहिए कि उनपर चलते हुए तो क्या, सोने में भी किसी तरह की हिचक

आदमी के मन में न हो। गलियां पक्की और पानी के निकास के लिए नालीदार होनी चाहिए। मंदिर और मसजिदें स्वच्छ और जब देखो तब नई-सी मालूम होने-वाली होनी चाहिए। और उसमें जानेवाले को शांति और पवित्रता की प्रतीति होनी चाहिए। गांव में और आसपास उपयोगी और फलोंदार पेड़ होने चाहिए। गांव से सटी हुई धर्मशाला और रोगियों के इलाज के लिए छोटा-सा उपचारगृह होना चाहिए। लोगों की रोज की हाजत के लिए ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि हवा, पानी, रास्ते वगैरह खराब न हों। हरेक गांववाले में अपना अन्न व वस्त्र गांव में ही पैदा करने या बनाने की शक्ति होनी चाहिए और चोर, डाकू, शेर, बाघ वगैरह के भय से बचाव करने की शक्ति होनी चाहिए। इनमें से बहुत-कुछ किसी समय हिंदुस्तान के गांव में था। जो नहीं था, संभव है, उस वक्त के लिए वह गैर-जरूरी था। हो या न हो; लेकिन मैंने ऊपर जैसी व्यवस्था बतलाई है, वैसी आज गांव की होनी चाहिए, इसके बारे में कोई शंका नहीं कर सकता। ऐसे ही गांव स्वावलंबी कहला सकते हैं और यदि सारे गांव ऐसे हो जायं तो हिंदुस्तान का दुःख बहुत-कुछ कम हो जाय।

इस दशा का लाना असंभव तो नहीं है, जितना हम समझते होंगे उतना मुश्किल भी नहीं है। कहते हैं, हिंदुस्तान में साढ़े सात लाख गांव हैं। हिसाब से एक गांव की आबादी ४०० पड़ती है। बहुतेरे गांवों में

१००० से कम ही है। मेरा दृढ़ मत है कि ऐसी छोटी आबादीवाले गांव में अच्छी व्यवस्था करना बहुत आसान है। उसके लिए बड़े व्याख्यानों की या कौंसिल के कायदों की जरूरत नहीं होती। सिर्फ एक ही जरूरत है और वह एक हाथ की उंगलियों के पोरों पर गिने जाने भर को शुद्धभाव से काम करनेवाले स्त्री-पुरुषों की। ये अपने आचरण से, सेवा-भाव से, प्रत्येक गांव में जरूरत के अनुसार फेरफार करा सकते हैं। यह भी नहीं है कि उन्हें रात-दिन इसी काम में लगा रहना पड़े। अपने निर्वाह का धंधा करते हुए भी अपनी सेवा-वृत्ति के संयोग से वे गांव में महत्वपूर्ण परिवर्तन करा सकते हैं।

ऐसे सेवकों को किसी बड़ी तालीम की जरूरत नहीं है। बिल्कुल अक्षर-ज्ञान न हो तो भी ग्राम-सुधार का काम हो सकता है। इसमें सरकार या राजाओं के बाधक होने की बात नहीं है और उनकी सहायता की भी कम जरूरत है। हर गांव में ऐसे स्वयंसेवक निकल आवें तो बिना किसी आडंबर के, बिना बड़े आंदोलन के, सारे हिंदुस्तान का काम बन जाय और थोड़े प्रयत्न से अकल्पित परिणाम हो सकता है। पाठक सहज में समझ सकते हैं कि इसमें धन की भी आवश्यकता नहीं है। जो कुछ है, सिर्फ सदाचार की अर्थात् धर्म-वृत्ति की है।

मैं अनुभवपूर्वक जानता हूं कि किसानों की तरक्की का यह आसान-से-आसान रास्ता है। इसमें एक गांव

को दूसरे गांव की राह देखने की जरूरत नहीं है। जिस गांव में किसी एक भी स्त्री या पुरुष का लोक-सेवा करने का शुद्ध विचार हो, वह उसी क्षण काम शुरू कर सकता है। और उसमें उसके सारे हिंदुस्तान की पूरी-पूरी सेवा का समावेश हो जाता है। मुझे आशा है कि गांव में बसनेवाले जो इसे पढ़ेंगे, वे मेरा बताया प्रयोग शुरू कर देंगे और थोड़े ही समय में अपने प्रयोग का परिणाम देश को दिखा सकेंगे।

३

यहां इन प्रयोगों के लिए अपने कुछ अनुभव देना चाहता हूं। चंपारन में स्वावलंबी पाठशालाएं खोलने का निश्चय होने पर मैंने स्वयंसेवक मांगे। उस समय आये हुए स्वयंसेवकों में स्व० डाक्टर देव और बेलगांव के वकील श्री सोमण थे। इन स्वयंसेवकों को सिर्फ तीन काम करने थे। आये हुए बालक-बालिकाओं को पढ़ाना, पास-पड़ोस के गांव के रास्ते, घर वगैरह को साफ रखना, गांववालों को सिखाना और बतलाना और आये हुए रोगियों को दवा देना। श्री सोमण भितिहरवा गांव में रखे गये थे। डा० देव पाठशाला-वाले गांव में दवा का बंदोबस्त करते थे। डेरा इनका भितिहरवा में था। वहां के लोगों के गले सुधार की बात उतारनी मुश्किल थी। डा० देव ने उन्हें सुधारों की तफसील बतला दी। रास्ते साफ करने और कुएं के पास ढाल करने और सारा कीचड़ निकाल देने की बात थी। लेकिन गांववाले डा० देव की बात कहां

सुनने वाले थे ? अंत में डा० देव और श्री सोमण ने कुदाल हाथ में लेकर कुएं के आस-पास ढाल करने और रास्ते साफ करने का काम शुरू किया। छोटा-सा गांव, बात बिजली की तरह फैल गई। गांववाले डा० देव की बातों का मतलब अब समझे। डा० देव के काम में जो बल था, वह उनके बतलाने में नहीं था। गांव-वाले स्वयं साफ करने निकल पड़े और तबसे भितिहरवा के कुएं और रास्ते सुंदर दिखाई देने लगे। कूड़े के ढेर गायब होगये। इसी बीच फूस की बनाई गई पाठशाला को किसी बदमाश ने फूंक दिया। एक सवाल पैदा हुआ, अब क्या करना ? क्या फिर से फूस से छाया जाय और जलने की जोखिम उठाई जाय ? श्री सोमण और डा० देव ने पक्की पाठशाला बनवाने का निश्चय किया। अब तो दोनों को भाषण करने की कला आगई थी। सामान की भीख मांगी। जहां जरूरत जान पड़ी, पैसे भी दिये और दोनों ने मजदूरी शुरू कर दी। पक्की पाठशाला की नींव उन्होंने अपने हाथों से रखी। तब गांववाले भी आ जुटे, कारीगर भी यथाशक्ति मदद करने लगे और भितिहरवा की पाठ-शाला आज इस बात की गवाही के लिए मौजूद है कि एक-दो आदमी निश्चय करें तो क्या नहीं कर सकते। इस ढंग का काम एक ही गांव में नहीं बल्कि जहां-जहां पाठशालाएं स्थापित की गईं, वहां-वहां अधिक परिमाण में हुआ। शिक्षकों के नाम की आकर्षण शक्ति के हिसाब से गांववाले काम में जुटे थे। इस सेवा-कार्य में अधिक

होशियारी की नहीं, लगन की जरूरत थी। उसकी मौजूदगी में होशियारी, कारीगरी वगैरह दूसरों से मिल जाती थी।

खेड़ा जिले में फसल का अनुमान करना था। सारे किसानों की मदद के बिना वह काम होने की संभावना नहीं थी। एक-एक गांव के बारे में एक-एक स्वयंसेवक ने आवश्यक सूचना प्राप्त कर ली। इतना ही नहीं, अपने अच्छे व्यवहार से किसानों का मन हर लिया। मैं भिन्न-भिन्न स्थानों के ऐसे अनेक उदाहरण दे सकता हूं।

अब आरंभिक कार्य-दिशा हमारी समझ में आ जानी चाहिए। गांव को सुव्यवस्थित करने का इच्छुक अपने रहने की ही गली को पसंद करेगा। उसके सब बसनेवालों को पहचान लेगा। उनके दुःख में बिना किसी दिखावे के भाग लेगा। गली की सफाई में उनकी मदद मांगेगा। पड़ोसी मजाक करेंगे, अपमान भी करेंगे। सेवक यह सब सहन करेगा, तथापि पहले की भांति उनके दुःख में भाग लेगा और स्वयं अकेले गली साफ करेगा। अपनी स्त्री, मां, बहन वगैरह से धीरे-धीरे इस काम में मदद पायगा। पड़ोसी मदद करें या न करें, तथापि गली तो हमेशा साफ रहेगी ही। और अनुभव से मालूम होगा कि यह काम ज्यादा दिनों का नहीं होगा। अंत में पड़ोसी स्वयं काम करने लगेंगे और एक गली की सुगंध सारे गांव में फैल जायगी।

यदि ऐसे सेवक को अधिक काम करने की हवस

हो और स्वयं ठीक-ठीक पढ़ा हुआ हो तो अपनी गली के निरक्षर लड़कों और बड़ों को भी अक्षर-ज्ञान देगा। यदि अपनी गली में कोई बीमार हो और पैसों से दवा करने में असमर्थ हो तो उसके लिए परोपकारी वैद्य ढूंढ़ निकालेगा। बीमार की कोई सेवा-शुश्रूषा करनेवाला न होने पर स्वयं करेगा। इससे उसको प्रत्येक पड़ोसी की आर्थिक और नैतिक स्थिति का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो जायगा और तब उसमें जिस सुधार की गुंजाइश होगी, उसकी योजना बनायगा। इस प्रकार के सुधार करते-करते उसे अपने पड़ोसी और उसके द्वारा सारे गांव की राजनीतिक स्थिति का भी अंदाज हो जायगा। यदि इस अंदाज के साथ उसमें लोगों से इकट्ठे मिलाकर काम लेने की ताकत आ जाय तो ऐसा मनुष्य लोगों की राजनीतिक स्थिति भी सुधारने में समर्थ होगा। अफ्रीका, चंपारन, खेड़ा इत्यादि प्रदेशों में मैंने देखा है कि अपढ़ माने जाने-वाले आदमियों ने अपनी लगन और लोकोपकारक बुद्धि के कारण अच्छी सेवा की है और जन-समाज पर असर भी डाला है। जिस किसी गांव में मैंने एक भी जानदार पुरुष या स्त्री को देखा, वहां उसे मैंने बहुत अच्छा काम करते पाया है।

अब हम स्वच्छता, नैतिक, शारीरिक तथा आर्थिक आरोग्य-संबंधी नियमों पर विचार करेंगे। मुझे आशा है कि जिन्हें ये पसंद आवेंगे, वे इन नियमों के अनुसार अपने गांवों में काम करने लगेंगे। इतना हो जाय तो

हम थोड़े ही समय में कितने ही गांवों की दशा पर भारी प्रभाव डाल सकेंगे ।

४

किसानों की दशा पर विचार किया गया । गांवों में स्वच्छता के नियम नहीं पाले जाते, यह भी हमने देखा । 'पहला सुख निरोगी काया' इस कहावत में बड़ा सत्य है । बहुत उच्च दशा को पहुंचे हुए स्त्री-पुरुष भले ही रोग से पीड़ित रहते हुए भी अपनी दशा संभाल सकें, पर हम लोग, जिन्हें अभी चोटी पर पहुंचना है, रोगी हो जायं तो चढ़ने में हांफेंगे ही ।

अंग्रेजी में एक कहावत है कि 'ठंडे पैरों कोई स्वर्ग में नहीं जा सकता ।' इंग्लैंड-जैसे सर्द मुल्क में लोगों को पैर ठंडे रहने में बड़ी परेशानी होती है, तब ईश्वर का स्मरण भी नहीं आता । कहावत है कि 'स्वच्छता यह दैवी स्थिति के समान है ।' हमारे मैले रहने या मैले वातावरण में रहने की कोई वजह नहीं है । मैल में पवित्रता नहीं होती । मैल अज्ञान की, आलस्य की, निशानी है । इसमें से किसान कैसे उबरें ? आइए, हम सफाई के नियमों की जांच करें ।

१—हमारे बहुतेरे रोगों की उत्पत्ति हमारे पाखाने या हमारे 'जंगल' जाने की आदत से ताल्लुक रखती है । सिर्फ तंदुरुस्त और बड़ी उम्र के आदमी ही 'जंगल' जा सकते हैं । दूसरों के लिए पाखाने न होने पर वे नालियों, गलियों या घर को पखाना बनाकर जमीन बिगाड़ते हैं और हवा को जहरीला बनाते हैं ।

इसके लिए हम दो नियम बना सकते हैं। यदि जंगल जाना हो तो गांव से एक मील दूर जायं। वहां आबादी न हो, आदमियों की आमद-रफ्त न हो, जंगल बैठने से पहले एक गड्ढा खोदें और क्रिया पूरी होने के बाद मैले पर खूब मिट्टी डाल दें। खोदी हुई सारी धूल से ढांक देने पर मैला ठीक दब जायगा। इतनी थोड़ी-सी तकलीफ उठाकर हम स्वच्छता के एक बड़े नियम का पालन कर सकते हैं। समझदार किसान को अपने खेत में ही पाखाना जाना चाहिए, जिसकी खाद होगी।

टट्टी के लिए बाहर जाने पर भी हरेक घर में एक पाखाना जरूर होना चाहिए। उसके लिए गमले इस्तेमाल करने चाहिए, जिनमें पाखाने के बाद हर आदमी को पूरी मिट्टी डालनी चाहिए, जिसमें बदबू न आय, मक्खियां न भिनकें, कीड़े न पैदा हों। इस गमले की नियमित सफाई होनी चाहिए। कुएंवाला पाखाना बेकार है। धरती के एक फुट की गहराई के हिस्से में ऐसे जीव इफरात से हैं, जो उतनी गहराई के मैले को तुरंत खाद की शक्ल में बदल देते हैं। अधिक गहराई में गाड़ा हुआ पाखाना गंदी गैस पैदा करता और हवा को बिगाड़ता है। गमला रोगन किया हुआ, लोहे का या मिट्टी का होना चाहिए। इसमें भी पैसे का ख़र्च नहीं है, सिर्फ उद्यम की जरूरत है। पेशाब भी जहां-तहां नहीं करना चाहिए। गलियों में पेशाब करना पाप मानना चाहिए। पेशाब के लिए

भी गमले होने चाहिए और उनमें काफी मिट्टी हो तो जरा भी बदबू न आय, छींटे न उड़ें और इस मिट्टी का खाद भी बन जाय।

हरेक किसान यदि इन नियमों का पालन करे तो उसके स्वास्थ्य में वृद्धि होगी, इसके सिवा उसकी माली हालत भी सुधरेगी; क्योंकि उसे बे-मेहनत के यह सुवर्णमय खाद नसीब होनी है।

२—गलियों में थूकना या नाक साफ नहीं करना चाहिए। कितनों का थूक ऐसा जहरीला होता है कि उसमें के कीटाणु तपैदिक-जैसे रोग फैलाते हैं। रास्ते में थूकना कितने ही देशों में अपराध माना जाता है। पान-सुरती खाकर थूकनेवाले तो दूसरों की भावनाओं की परवा ही नहीं करते। थूक और सिनक (नेटा) आदि पर भी धूल डालनी चाहिए।

३—पानी के बारे में भी किसान बड़ी बेपरवाही रखता है। कुएं, तालाव, जिसमें से पीने-पकाने के लिए पानी लिया जाता है, साफ होने चाहिए, उनमें पत्ते नहीं पड़ने चाहिए; उनमें स्नान नहीं करना चाहिए; उनमें पशुओं को नहलाना नहीं चाहिए; उनमें कपड़े नहीं धोये जाने चाहिए, इसमें भी पहले थोड़ी मेहनत का ही काम है। कुआं साफ रखना तो आसान बात है, तालाब साफ़ रखना इससे कुछ कठिन है। पर लोग सीख जायं तो सब आसान है। खराब मैला पानी पीने में घृणा हो तो पानी की सफाई के नियम सहज में पाले जा सकते हैं। पानी को हमेशा

ठोस बुनावट के साफ कपड़े से छानना चाहिए।

कोई बुढ़िया एक मेज साफ़ करती थी। साबुन से धोती थी और पोतने से पोंछती थी। किसी तरह मेज साफ ही न होती थी। बुढ़िया साबुन बदलती थी, पोतना बदलती थी; पर मेज जैसी-की-तैसी रहती थी। किसी देखनेवाले ने कहा, "बुढ़िया माई, पोतना छोड़ो। कोई साफ कपड़ा लो तो अभी मेज साफ हो जायगी।" बुढ़िया को समझ आई। ऐसे ही गंदे कपड़े से छानने या पोंछने से अच्छा है न छानना।

गलियों में कूड़ा न डालने का नियम समझाने की जरूरत नहीं होनी चाहिए। कूड़े का भी शास्त्र है। कांच, पत्थर वगैरह को गहरा गाड़ना चाहिए। लकड़ी के छिलके दतौन आदि की फाड़-चीर को धोकर सुखा लिया जाय और ईंधन की तरह काम में लिया जाय। चिथड़े बेच डाले जायं। जूठी तरकारी का छिलका आदि गाड़ देना चाहिए, खाद बन जायगा। इस प्रकार के बने हुए खाद के मैंने ढेर देखे हैं। चिथड़ों से कागज बनते हैं। गांव में किसी कूड़ा उठानेवाले की जरूरत न होनी चाहिए; क्योंकि वहां कूड़ा बहुत कम होता है और जो होता है, वह खासकर खाद बनाने योग्य होता है।

गांव या घरों के आस-पास पानी भरे रहनेवाले गड़ही-गड़हे नहीं होने चाहिए। पानी न भरे रहनेवाली जगहों में मच्छरों की उत्पत्ति नहीं होती। जहां मच्छर नहीं होते, वहां मलेरिया कम होता है। दिल्ली

के आस-पास पानी भरा रहता था, अब वह जगह भर जाने के बाद वहां मच्छर घट गये और मलेरिया भी घट गया।

उम्मीद है कि सफाई के इन नियमों से यह लेख भर देने की कोई शिकायत न करेगा। इन नियमों के पालन पर इक्कीस करोड़ किसानों की तंदुरुस्ती का आधार है।

जो स्वयंसेवक अपने गांव में इन नियमों की तालीम किसानों को देगा, वह अपने गांव के रहनेवालों की आयु बढ़ायगा, रोगों को रोकने का महान् उपाय उनके हाथ में देगा। यह सबसे मुश्किल काम है; क्योंकि इसमें रस लेनेवाले थोड़े हैं, तथापि किसी दिन यह करना ही होगा। इस धर्म के पालन में भूल को अवकाश नहीं है। जितना पाला जाय, उतना फल मिलेगा। जिसे शुरू करना हो, करके सालभर में अपने गांव की तंदुरुस्ती बदल सकेगा।

: ९ :

ग्राम-सेवा

(उपवास के पश्चात् शय्या पर पड़-पड़ी भी गांधीजी ने महत्वपूर्ण कार्यों में ध्यान देना आरंभ कर दिया है। गुजरात-विद्यापीठ के कुछ कार्यकर्ता विद्यापीठ के भावी कार्यक्रम के विषय में बातें करने अभी वर्धा आये थे। उस बातचीत का ग्राम-सेवा तथा हरिजन-कार्य के साथ विशेष संबंध होने के कारण थोड़े में उसका सार यहां देता हूं। --म० दे०)

जंगम विद्यापीठ

आरंभ से ही मैं यह मानता और कहता आया

हूं कि विद्यापीठ का सच्चा काम तो गांवों में है; पर आज तक हम लोगों ने यह काम इस कल्पना के आधार पर ही चलाया कि वह किसी केंद्रीय संस्था के द्वारा चलाया जा सकता है । आज मैं एक कदम और आगे बढ़ने के लिए कहता हूं—और वह यह कि हमारी विद्यापीठ अब गांवों में जा बसे। यह जान लेना है कि गांवों में विद्यापीठ के जा बसने से मेरा क्या अभिप्राय है।

सत्याग्रहाश्रम को हमारे बाह्य रूप से तोड़ देने का यह अर्थ नहीं होता कि आश्रम का असली रूप भी तोड़ दिया गया है। आश्रमवासी जहां-कहीं भी आश्रम के आदर्शों के अनुसार आचरण करते हुए रहें, वहीं आश्रम है।

इस दृष्टि से देखिए तो आश्रम का अब एक व्यापक स्वरूप हो गया है। जीवित संस्था का तो यह उद्देश्य होना चाहिए कि उसमें तैयार हुए जो व्यक्ति हों, सब उस संस्था को अपने जीवन-क्षेत्र में प्रत्यक्ष उतारकर दिखावें ।

ऐसे बहुत-से व्यक्तियों के तैयार हो जाने पर संस्था का मूल रूप न रहने पर कुछ हानि होने की संभावना नहीं रहती।

इस प्रकार विद्यापीठ का प्रत्येक सेवक, जिसने विद्यापीठ के आदर्शों की दीक्षा ली हो, विद्यापीठ की आजीवन सेवा करने की प्रतिज्ञा की हो और जिसने **'सा विद्या या विमुक्तये'** का रहस्य कम-से-कम अर्थ से

लेकर गहरे-से-गहरे अर्थ तक ठीक-ठीक समझ लिया हो, उसे स्वयं ही जंगम अर्थात् चलती-फिरती विद्यापीठ बनकर किसी गांव में चला जाना चाहिए। वहां वह विद्यापीठ के आदर्शों का परिपालन करेगा और लोगों को समझाने-बुझाने का यत्न भी करेगा।

यह निस्संदेह संभव है कि इस तरह गांव में बहुत-से सेवक जाकर बस जायं और वहां का अनुभव प्राप्त कर लेने पर एक पथ-प्रदर्शक केंद्रीय संस्था बना लें। पर हमारी विद्यापीठ इस प्रकार की संस्था नहीं है। उसका ग्रामीण अनुभव तो नहीं जैसा ही है।

मध्यबिंदु चर्खा

ऐसे ग्राम-सेवक का मध्यबिंदु 'चर्खा' होगा। चर्खे के संदेश का आशय मैं अभीतक जैसा चाहिए, वैसा पूरा-पूरा समझा नहीं सकता था, क्योंकि मुझे स्वयं ही उसका स्पष्ट आकलन नहीं हुआ था, किंतु इस नौ महीने के दौरे में मैंने जो निरीक्षण और चिंतन किया, उससे—खासकर दक्षिण भारत के प्रवास में—मुझे यह 'दीपकवत्' स्पष्ट होगया। यह चिंतन मैं करता ही रहता हूं कि गांवों में व्यापक और सहायक उद्योग के रूप में तथा दरिद्रता-निवारक साधन के रूप में चर्खा किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है। अभी तो इस रीति से चर्खे की ठीक-ठीक साधना नहीं हुई। गांवों के जुलाहे चर्खे से ही जिंदा रह सकते हैं, मिल-मशीनों के कते सूत से कभी नहीं, यह बात भी

अभी लोगों के पूरी-पूरी समझ में नहीं आई है। आज चर्खे की स्थापना इतनी ही हुई है कि शुद्ध रूप में केवल खादी ही काम में लानेवालों का जो एक वर्ग देश में होगया है, उसकी कपड़े की आवश्यकता पूरी करने तक ही गांव के कुछ आदमियों के लिए यह एक साधारण-सा उद्योग रह जायगा; लेकिन ऐसे छोटे-से काम के लिए चर्खा-संघ जैसी विशाल संस्था के अस्तित्व की आवश्यकता नहीं है। खादी के मूल में मेरी कल्पना तो यह है कि खादी हमारे किसानों के लिए अन्नपूर्णा का काम करनेवाली है। यह हजारों-लाखों हरिजन बुनकरों की प्राणशक्ति है। कम-से-कम चार मास तो किसान निरुद्यमी रहता है। खादी उसे उद्यम देती है। हमारे देश में आज न तो उद्यम है न स्वावलंबन। आलस्य ने यहां बड़ी गहरी जड़ जमा रखी है, उद्योग और स्वावलंबन को देश में यदि पुनः लौटा लाना है तो यह केवल चर्खे के द्वारा ही संभव है।

चर्खे में साम्यवाद

इस देश में यदि हमें रक्त की नदी नहीं बहानी है, लोगों में आज से भी अधिक 'पशुता' नहीं लानी है तो खादी के इस व्यापक संदेश को देश की नस-नस में पहुंचा देना चाहिए। साम्यवाद के नाम से जो चीज आज सुनाई दे रही है, वह वास्तविक साम्यवाद नहीं है। भारतवर्ष जिस साम्यवाद को पचा सकता है, वह साम्यवाद तो चर्खे की गूंज में गूंज रहा है। लोगों

को चर्खे का इतना व्यापक संदेश सुना देने का काम मेरा और चर्खा-संघ का था; किंतु खादी की प्रवृत्ति जिस प्रकार से आज तक चलती आ रही है, उसी प्रकार से हम उसे चलाते रहे तो यह कोई व्यापक चीज सिद्ध न होगी, यह इस यात्रा में मुझे स्पष्ट होगया है। इस संदेश को समझाने और उसे सजीव रूप देने का प्रधान कार्य हमारे ग्रामसेवक का ही होना चाहिए।

ग्रामसेवक गांव में जाकर स्वयं नियमपूर्वक चर्खा चलावेगा और सिर्फ सूत ही नहीं कातेगा, बल्कि अपनी जीविका के लिए बसूला या हथौड़ा चलायगा, कुदाली और फावड़ा चलायगा या हाथ-पैर से जो भी मजदूरी कर सके, करेगा। खाने-पीने और सोने के आठ घंटे छोड़कर उसका बाकी का सारा समय किसी-न-किसी काम-काज में लगा ही रहेगा। अपना एक मिनट भी वह बेकार न जाने देगा, काहिली को न तो वह अपने पास फटकने देगा, न दूसरों के। लोगों को यह बतलाता रहेगा कि मुझे तो यज्ञ करना है, शरीर का पालन-पोषण शारीरिक श्रम से ही करना है। मन के पोषण के लिए मानसिक शिक्षा—संस्कृति आवश्यक है। शारीरिक काम में श्रम-विभाग भले ही हो; किंतु यह उचित नहीं कि एक वर्ग तो शारीरिक श्रम किया करे और दूसरा केवल मानसिक श्रम।

अपने इस नौ महीने के प्रवास में मैंने देखा है कि हमारे देश से यदि यह आलस्य विदा न हुआ तो कितनी ही सुविधाएं क्यों न मिलें, लोग भूखे ही

रहेंगे। जो अन्न के दो दाने खाता है, उसे चार दाने उपजाने का धर्म स्वीकार करना ही चाहिए। ऐसा हो जाय तो दूसरे करोड़ों मनुष्य भी हिंदुस्तान में पलने लगें और यह न हुआ तो जन-संख्या चाहे कितनी ही कम क्यों न हो जाय, भुखमरा वर्ग तो देश में बना ही रहेगा। इस प्रकार ग्राम-सेवा के इस कार्य में रस लेनेवाले सेवक गांवों में जायंगे तो शिक्षक के रूप में, पर वहां स्वयं सीखनेवाले बनकर रहेंगे। नित्य नई शोध और साधना करते रहेंगे। मेरी कल्पना यह नहीं है कि वे १६ घंटे खादी के ही काम में लगे रहें; बल्कि यह है कि खादी के काम से जितना समय उनके पास बचे, उसमें वे गांव के चालू उद्योग-धंधों की खोज करें, उनमें दिलचस्पी लें, लोगों के जीवन में अपनेको ओत-प्रोत कर दें। खादी या चर्खे में भले ही लोगों का विश्वास न हो, तो भी इन सेवकों को वे मनुष्य तो समझेंगे ही और इनके जीवन से मिलनेवाली उपयोगी बातों को वे ग्रहण करेंगे। अपनी शक्ति से बाहर की बातों में स्वयंसेवक हाथ न डालें, जैसे लोगों के कर्ज़ की बात। ऐसी अशक्य बातों में पड़ने से उनमें खुद फंस जाने का डर है। गांव की सफाई ग्राम-सेवक का एक दूसरा महत्व-पूर्ण कार्य रहेगा। अपने रहने का घर वह ऐसा साफ़-सुथरा रखेगा कि उसे देखते लोगों का मन न भरेगा; पर जैसे वह अपने घर के सहन की सफाई रखेगा, वैसे ही लोगों के सहन की भी सफाई करता रहेगा।

वैद्य-डाक्टर न बनें

ग्रामसेवक गांवों में वैद्यराज या डाक्टरसाहब का धंधा न ले बैठें। हरिजन-प्रवास में मुझे एक ग्राम-आश्रम देखने को मिला; पर यहां मैंने जो देखा, उससे बड़ा क्षोभ हुआ। आश्रम के व्यवस्थापक और कार्यकर्त्ताओं को मैंने खूब खरी-खरी सुनाईं। मैंने कहा—"वाह साहब, वाह! आपने यह खूब आश्रम बनाया। यहां तो आप एक आलीशान महल बनाकर रहते हैं। यह तो खासा एक डाकबंगला है। आपने इसमें दवाखाना भी खोल दिया है। आस-पास के गांवों में आपके स्वयंसेवक घर-घर दवाइयां बांटते फिरते हैं। कंपाउंडर भी आपके दवाखाने में हैं। मुझसे बड़े गर्व से आप कहते हैं, नित्य दूर-दूर से लोग दवा लेने हमारे आश्रम में आते हैं और हर माह १२०० मरीजों की औसत हाजिरी रहती है। तुमने आश्रम में कभी ऐसा शानदार मकान और दवाखाना देखा था? मुझे ऐसा महल खड़ा करना होता या ऐसा बढ़िया दवाखाना खोलना होता तो क्या उसके लिए मुझे कोई पैसा देनेवाला न मिल जाता? आश्रम का मकान भी मेरी मर्जी से अधिक खर्चीला था तो भी तुम्हारे इस महल की बराबरी तो मेरा आश्रम भी नहीं कर सकता। लोगों को इस तरह दवा-दारू देने का काम तुम्हारा नहीं। तुम्हारा काम तो उन्हें स्वच्छता का 'सबक' सिखाने का है। स्वेच्छाचारी बनकर, गंदे रहकर और घर या गांव को गंदा रख

कर ये लोग बीमार पड़ें और तुम्हारा दवाखाना उन्हें दवाइयां दे, यह तो ग्राम-सेवा नहीं है। तुम्हें तो गांव वालों को संयम और स्वच्छता सिखानी है, आरोग्य के नियम सिखाने हैं। यही उनकी सेवा है। मेरी सलाह मानो तो इस आलीशान मकान को छोड़ दो और सामने के झोंपड़े में जा बसो। यह मकान तो भाड़े पर लोकल बोर्ड को उठा दो और उसे ही यहां अपना दवाखाना चलाने दो।" चंपारन में हमारे पास क्विनैन, रेंडी का तेल और आइयोडीन, यही दो-तीन दवाइयां रहती थीं। आरोग्य और सफाई की बात ही ग्रामसेवक को लोगों के दिलों में बैठानी है। आज तो गांवों की यह दशा है कि लोग चाहे जहां पेशाब करने बैठ जाते हैं, चाहे जहां थूक देते हैं और चाहे जहां कूड़ा-कचरा डाल देते हैं।

इसके बाद ग्राम-सेवक को गांव के हरिजनों की सेवा करनी है। उसका घर हरिजनों के लिए हमेशा खुला रहेगा। संकट और कठिनाई के समय स्वभावतः वे लोग उसके यहां दौड़े आयंगे। यदि गांववाले उस सेवक के घर में हरिजनों का आना-जाना पसंद न करें, और उसे अपनी बस्ती से निकाल बाहर करें या वहां रहकर वह हरिजन-सेवा न कर सके तो हरिजन-बस्ती में जाकर वह अपना डेरा डाले।

शिक्षा में अक्षर-ज्ञान का स्थान

अब रहा शिक्षा का प्रश्न। १९२२ में जो

'बालपोथी' मैंने लिखी थी, उसे मैं भूला नहीं हूं। उसमैं की चीज मैं आप लोगों को यद्यपि ग्रहण नहीं करा सका; पर वह चीज अब भी मेरे पास वैसी ही बनी हुई है। मैं नहीं जानता कि वह पोथी आज प्राप्य है या नहीं; पर वह उपलब्ध न हो तो मैं उसे लिखकर दे सकता हूं। वास्तविक बात यह है कि हाथ के पहले बालकों की आंख, कान और जीभ काम करेगी, अतः अध्यापक उसे इतिहास, भूगोल आदि जो भी पढ़ायगा, वह जबानी ही पढ़ायगा। इसके बाद वह वर्णमाला और बारहखड़ी पढ़ेगा और फिर अक्षर चित्रों के बनाने का अभ्यास करेगा। इसका पूरा-पूरा प्रयोग आपको करना चाहिए। मुझे लगता है कि लोगों की बुद्धि तक पहुंचकर उसे जाग्रत करने का मेरा यह मार्ग सुगम-से-सुगम है। मेरे बचपन का अनुभव मेरी स्मृति में अब भी वैसा ही ताजा बना हुआ है। जब मैंने महाभारत की कहानियां सुनी थीं, तब मैं शायद अक्षर गोदना सीख रहा था और रामायण की बात जब सुनी तब एक-दो पोथियां पढ़ी होंगी; पर इससे मुझे महाभारत और रामायण की कथा समझने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती थी।

लोगों को हमें भ्रम-जाल में नहीं डालना है। यदि हम उनसे यह कहते हैं कि बिना अक्षर-ज्ञान के शिक्षा नहीं प्राप्त हो सकती तो वे उल्टे ही रास्ते जायंगे। बड़ों को और बालकों को इस प्रकार मौखिक ज्ञान देने की यह बात मेरी ग्राम-संगठन की कल्पना में

मौजूद है; किंतु इसका अर्थ कोई यह न करे कि मैं साक्षरता का विरोधी हूं। मैं तो अक्षर-ज्ञान का सदुपयोग चाहता हूं।

ग्रामसेवक साहित्यिक या ज्ञान-विलासी जीवन बिताकर ग्राम-वासियों को असली शिक्षा-ज्ञान नहीं दे सकता। उसके पास तो बसूला, हथौड़ा और फावड़ा होगा—किताबें तो थोड़ी-सी ही होंगी। किताबें पढ़ने में वह कम-से-कम समय लगायगा। लोग उससे मिलने आयं तो उसे पड़े-पड़े किताबों के पन्ने उलटते न पायं, उन्हें तो वह औजार चलाता हुआ ही मिले। मनुष्य जितना खाता है, उससे अधिक पैदा करने की शक्ति ईश्वर ने उसे दी है। दुर्बल-से-दुर्बल मनुष्य इतना पैदा कर सकता है। इसके लिए वह अपने बुद्धिबल का उपयोग करेगा। लोगों से वह कहेगा कि मैं आपकी सेवा करने आया हूं, पेट के लिए आप मुझे दो रोटियां दे दें। संभव है कि लोग उसका तिरस्कार करें, तथापि उसे अपने गांव में टिका तो रहने देंगे ही। कहीं के सनातनी उसे रोटी न दें तो हरिजन भाई तो देंगे ही। उसने यदि सर्वार्पण कर दिया है तो हरिजनों के घर से रोटी लेते उसे लज्जित होने की जरूरत नहीं। उसे यदि भोजन मिल जाय तो वह अपनी पैदा की हुई चीजों के बेचने आदि के झंझट में न पड़े; पर जहां लोगों का सहयोग न मिलता हो, वहां वह स्वयं कोई भी उद्योग करके उससे अपना गुजारा कर ले। शुरू-शुरू में तो जहांतक हो सके, किसी सामाजिक

संस्था के कोष से थोड़ा-सा पैसा लेकर वह अपना निर्वाह कर सकता है।

गो-रक्षा

अभी गो-रक्षा का प्रश्न मैंने जान-बूझकर छोड़ दिया है। यह बड़ा व्यापक प्रश्न है। अभी तो हम चमड़ा सिझाने और रंगने का ही सवाल हल नहीं कर सके हैं। यह तो सूझ रहा है कि गाय का पुनरुद्धार हमें किस प्रकार करना है; पर यह बात अभी ठीक-ठीक समझ में नहीं आई है कि इस संबंध के उपायों की योजना किस तरह तैयार की जांय। भैंस को उत्तेजना देना एक तरह से गो-वंश का नाश करना है; पर यह चर्चा तो फिर कभी करूंगा।

आत्म-बल ही मुख्य बल है

याद रखिए कि हमारे अस्त्र-शस्त्र सब आध्यात्मिक हैं। एक बार हममें आध्यात्मिक शक्ति आई कि फिर उसे कोई रोक नहीं सकता। यह मैं अपने वर्षों के अनुभव-सिद्ध विश्वास के आधार पर कह रहा हूं। यह आध्यात्मिक शक्ति चर्म-चक्षुओं से प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली कोई साकार वस्तु नहीं है, तथापि मैं कहता हूं कि मुझे तो यह सामने दिखाई देनेवाली-जैसी चीज लगती है।

आप यह न कहें कि ग्राम-सेवा का यह कार्य-क्रम तो हमसे नहीं पूरा होने का। यह चीज तो असंभव है; क्योंकि हममें योग्यता ही नहीं। मेरा तो यह

कहना है कि यदि ग्राम-सेवा की बात निःसंशय रूप से आपके दिल में बैठ गई है तो आप सब लोग इस कार्यक्रम को पूरा कर सकते हैं। आप अयोग्य नहीं हैं। बात तो समझ में आ गई; पर उसपर हम अमल न कर सकें तो इसमें घबराने या हताश होने की कोई बात नहीं है। प्रयोग करने में शर्म क्या ? हमें तो गांव में बैठकर इसे अमल में लाना है, अमल करते-करते ही तो अनुभव प्राप्त होगा'

ह० से० ७–६–३४]

: १० :

वीरभूमि का एक नम्र देहाती

वीरभूमि के नम्र देहाती ने, जो शांति-निकेतन में रहते हैं, दीनबंधु एंड्रयूज की मार्फत मेरे पास नीचे लिखे प्रश्न भेजे हैं :

१. "आपकी राय में आदर्श भारतीय ग्राम की कल्पना क्या है ? हिंदुस्तान की वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक दशा में 'आदर्श गांव' के ढंग पर एक ग्राम का किस हद तक वास्तविक पुनर्निर्माण किया जा सकता है ?

२. "एक कार्यकर्ता को सबसे पहले गांव की किन समस्याओं को हल करने की कोशिश करनी चाहिए और किस प्रकार उसे उनका आरंभ करना चाहिए ?

छोटे पैमाने पर ग्रामीण प्रदर्शनियां या संग्रहालय

बनाये जायं तो उनके खास-खास विषय क्या हों और पुनर्निर्माण में इन प्रदर्शनियों का सबसे अच्छा उपयोग कैसे किया जाय?"

१. आदर्श भारतीय ग्राम इस तरह बसाया और बनाया जाना चाहिए कि जिससे वह संपूर्णतया नीरोग रह सके। उसके झोंपड़ों और मकानों में काफी प्रकाश और वायु का गुजर होना चाहिए, गांव ऐसी चीजों से बना होना चाहिए, जो पांच मील की सीमा के अंदर उपलब्ध हो सकती हों। हर मकान के आस-पास आगे-पीछे इतना बड़ा सहन होना चाहिए कि जिसमें गृहस्थ अपने लिए साग-भाजी लगा सके और अपने पशु रख सके। गांव की गलियों और रास्तों पर जहांतक संभव हो, धूल नहीं होनी चाहिए। आवश्यकतानुसार गांव में कुएं हों जिनसे गांव के सब आदमी पानी भर सकें। सबके लिए प्रार्थना-घर या मंदिर हो, सार्वजनिक सभा आदि के लिए एक अलग स्थान हो। गांव की अपनी गोचर भूमि हो, सहकारी तरीके की एक गौशाला हो, ऐसी प्राथमिक और माध्यमिक शालाएं हों जिनमें औद्योगिक शिक्षा सर्व-प्रधान रखी जाय। गांव के अपने मामलों का निपटारा करने को एक ग्राम-पंचायत भी हो। अपनी आवश्यकता के लिए नाज, साग-भाजी, फल, खादी इत्यादि खुद गांव में ही पैदा हों। एक आदर्श गांव की मेरी अपनी यह कल्पना है। मौजूदा परिस्थिति में उसके मकान ज्यों-के-त्यों रहेंगे। अभी सिर्फ यत्र-तत्र थोड़ा-सा सुधार

कर देना काफी होगा। यदि कहीं जमींदार हो और वह भला आदमी हो या गांव के लोगों में सहयोग और प्रेम-भाव हो तो बिना सरकारी सहायता के स्वयं ग्रामीण ही—जिनमें जमींदार भी शामिल हैं—अपने बल पर लगभग ये सारी बातें कर सकते हैं। हां, सिर्फ नये सिरे से मकानों को बनाने की बात छोड़ दीजिए। और यदि सरकारी सहायता भी मिल जाय तब तो ग्रामों की इस तरह पुनर्रचना हो सकती है कि इसकी कोई सीमा ही नहीं। पर अभी तो मैं यही सोच रहा हूं कि स्वयं ग्राम-निवासी अपने बल पर परस्पर सहयोग के साथ और सारे गांव के भले के लिए हिल-मिल कर मेहनत करें तो क्या-क्या कर सकते हैं? मुझे तो यह निश्चय हो गया है कि यदि उन्हें उचित सलाह और मार्ग-दर्शन मिलता रहे तो गांव की—मैं व्यक्तियों की बात नहीं करता—आय ठीक दूनी हो सकती है। व्यापारी दृष्टि से काम में आने लायक अटूट साधन-सामग्री हर गांव में चाहे न हो, पर स्थानीय उपयोग और लाभ के लिए तो साधन लग-भग हर गांव में हैं। पर बहुत बड़ा दुर्भाग्य तो यह है कि अपनी दशा सुधारने के लिए गांव के लोग स्वयं कुछ नहीं चाहते!

२. गांव के किसी कार्यकर्ता को सबसे पहले गांव की सफाई और आरोग्य के सवाल को अपने हाथ में लेना चाहिए। यों तो ग्रामसेवकों को किंकर्तव्य-विमूढ़ कर देनेवाली अनेक समस्याएं हैं; पर यह

ऐसी हैं जिनकी सबसे अधिक लापरवाही की जा रही है। फलतः गांवों की तंदुरुस्ती बिगड़ती जा रही है और रोग फैलते रहते हैं। यदि ग्रामसेवक स्वेच्छा-पूर्वक भंगी बन जाय तो वह प्रतिदिन मैला उठाकर उसकी खाद बना सकता है और गांव के रास्ते बुहार सकता है। वह लोगों को बतलाये कि उन्हें पाखाना-पेशाब कहां करना चाहिए। सफाई कैसे रखनी चाहिए, उससे क्या लाभ हैं, न रखने से क्या-क्या नुकसान होता है। गांव के लोग उसकी बात सुनें या न सुनें, उसे अपना काम जारी रखना चाहिए।

३. समस्त ग्रामीण प्रदर्शनियों में चरखे को प्रधानता मिलनी चाहिए और स्थानीय परिस्थिति के लिए लाभदायक अन्य उद्योग उसके आस-पास होने चाहिए। यदि ऐसी प्रदर्शनी हो तो उसके साथ-साथ प्रत्यक्ष प्रयोग और व्याख्यान तथा पर्चे भी हों तो ग्रामीणों के लिए वह प्रदर्शनी निस्संदेह वस्तुपाठ का काम देगी और उनके लिए खूब शिक्षाप्रद होगी।

: ११ :

एक ग्राम-सेवक के प्रश्न

एक ग्राम-सेवक लिखता है—

१. लगभग सौ आदमियों की आबादी वाले एक छोटे गांव में मैं कार्य कर रहा हूं। आप कहते हैं कि दवादारू देने के पहले ग्राम-सेवक को स्वच्छता पर ध्यान देना चाहिए; लेकिन जब कोई ज्वर-पीड़ित ग्रामवासी

मदद मांगने आवे तब ग्राम-सेवक का क्या कर्त्तव्य है ? अबतक तो मैं उन्हें गांव में मिलनेवाली देशी जड़ी-बूटियों को ही काम में लाने की सलाह देता आया हूं ।

२. बरसात के दिनों में मैले का क्या करना चाहिए ?

३. मैला क्या सभी फसलों में काम दे सकता है ?

४. शक्कर के बजाय गुड़ खाने में क्या लाभ है ?

(१) जहां ज्वर, अजीर्ण या इसी प्रकार के सामान्य रोगों के रोगी ग्राम-सेवकों की मदद लेने आवें, वहां वे यथाशक्ति उनकी मदद अवश्य करें। रोग का निदान ठीक हो जाना चाहिए, फिर गांव में उस रोग की सस्ती-से-सस्ती और अच्छी-से-अच्छी दवा तो मिल ही जायगी। दवाइयां कोई अपने पास रखना ही चाहता हो तो रेंडी का तेल, कुनैन और उबला हुआ गरम पानी, ये सबसे बढ़िया दवाएं हैं। रेंडी का तेल सभी जगह मिल सकता है। सनाय की पत्ती से भी वही काम निकल सकता है। कुनैन का मैं कम ही उपयोग करता हूं। प्रत्येक प्रकारके ज्वर में कुनैन देने की जरूरत नहीं और न प्रत्येक ज्वर कुनैन से काबू में आता ही है। अधिकांश ज्वर तो पूर्ण या अर्द्ध उपवास से ही शांत हो जाते हैं। अन्न-दूध छोड़ देना, फलों का रस अथवा मुनक्का का उबला हुआ पानी लेना और नीबू के ताजे रस या इमली के साथ गुड़ का उबला हुआ पानी लेना भी अर्द्ध उपवास है। उबला हुआ पानी तो रामबाण औषधि है। आंतों को

यह खलबला देता है और पसीना लाता है जिससे बुखार का जोर कम हो जाता है। यह एक ऐसी रोगाणुनाशक औषधि है कि जिसमें किसी तरह की जोखिम नहीं है और सस्ती इतनी कि एक कौड़ी भी खर्च नहीं होती। हर हालत में जब भी पानी पीना हो तो उसे कुछ ठंडा करके पीना चाहिए। उतना ही गरम पीना चाहिए जितना मजे में सहन हो सके। उबालने का अर्थ महज गरम करना नहीं है। पानी खौलने लगे और उससे भाप निकलने लगे तभी उसे उबला हुआ समझना चाहिए।

जहां ग्राम-सेवक खुद किसी निश्चय पर न पहुंच सकें वहां उन्हें स्थानीय वैद्यों का पूरा-पूरा सहयोग अवश्य लेना चाहिए। जहां वैद्य न हों अथवा भरोसे वाले न हों और ग्राम-सेवक पड़ोस के किसी परमार्थी डाक्टर को जानते हों तो उन्हें जरूर उसकी मदद लेनी चाहिए।

पर उन्हें मालूम रहना चाहिए कि रोग के उपचार में भी स्वच्छता का स्थान सबसे महत्वपूर्ण है। उन्हें याद रखना चाहिए कि सर्वश्रेष्ठ वैद्य तो अकेली प्रकृति ही है। वे इस बात का विश्वास रक्खें कि मनुष्य के बिगाड़े को प्रकृति संवारती रहती है। लाचार तो वह उस समय हो जाती है, जब मनुष्य निरंतर उसकी अवहेलना करता है। उस समय जिसकी दुरुस्ती असाध्य हो जाती है उसे नष्ट कर डालने को वह अपने अंतिम और अटल दूत 'मृत्यु' को भेजती है

तथा उस देही को नया चोला देती है। स्वच्छता और स्वास्थ्य-रक्षा का कार्य करनेवाले मनुष्य प्रत्येक व्यक्ति के इस सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक की सर्वोत्तम सहायता करते हैं। उन्हें इसका पता हो या न हो, यह और बात है।

(२) बरसात के दिनों में भी गांव वालों को ऐसी जगहों पर पाखाने जाना चाहिए, जहां मनुष्यों के आवागमन का मार्ग न हो। मैले को गाड़ना चाहिए; पर ग्रामवासियों को परंपरा से उस मिली हुई भ्रामक शिक्षा के कारण मैले के गाड़ने का यह प्रश्न सबसे कठिन है। सिंदी* गांव में हम यह प्रयत्न कर रहे हैं कि गांववाले सड़कों पर पाखाना न फिरें; बल्कि पास के खेतों में जायं और अपने पाखाने पर सूखी-साफ मिट्टी डाल दिया करें। दो महीने की लगातार मेहनत और म्यूनिसिपैलिटी के मेम्बरों तथा दूसरे लोगों के सहयोग का इतना तो परिणाम तो हुआ है कि वे अब साधारणतः रास्तों को भ्रष्ट नहीं करते; पर उनसे कितना ही क्यों न कहा जाय, अपने मल-मूत्र पर मिट्टी तो वे अब भी नहीं डालते। कहो तो यह जवाब देंगे, "यह तो बिलकुल ही भंगी का काम है।। विष्ठा को देखना ही पाप है; फिर उसपर मिट्टी डालना तो उससे भी घोर पाप है।" उन्हें शिक्षा ही ऐसी मिली है। यह विचित्र विश्वास उसी शिक्षा का फल है। इसलिए ग्रामवासियों के हृदय पर नया संस्कार जमाने के पहले ग्राम-सेवकों

*वर्धा के पास का एक गांव

को उनके इन रूढ़िगत संस्कारों को एकदम मिटा देना होगा। यदि हमारा अपने कार्यक्रम में दृढ़ विश्वास है, यदि नित्य सबेरे झाड़ू लगाते रहने के काम में हमारे अंदर पूरा धैर्य है और यदि गांववालों के इन कुसंस्कारों पर हम चिढ़ते नहीं हैं, तो उनके ये सब मिथ्या-विश्वास इस प्रकार लुप्त हो जायेंगे जैसे सूर्य के प्रकाश से कुहरा नष्ट हो जाता है। पर युगों का यह वज्र-अज्ञान आपके दो-चार महीने के पदार्थ-पाठ से तो दूर नहीं हो सकता।

सिंदी गांव में हम वर्षा का सामना करने की भी तैयारी कर रहे हैं। अपनी खेती की रखवाली तो किसान करेंगे ही, उस समय इस प्रकार वे लोगों को अपने खेतों में पाखाना फिरने कैसे आने देंगे, जैसे कि आज आने देते हैं। हमने लोगों के सामने यह तजवीज रखी है कि वे खेती की हदबंदी के अंदर कुछ जमीन बिलकुल अलग करके आड़ कर लें और उस घेरे के भीतर ही पाखाना फिरा करें। चौमासे के अंत में जमीन के इस टुकड़े में काफी खाद तैयार हो जायगा। वह समय आ रहा है कि जब खेतवाले स्वयं लोगों से अपने खेतों में शौच-क्रिया के लिए कहेंगे। यदि डॉ० फाउलर की कूत को हम मान लें तो किसी खेत में बिलानागा पाखाना जानेवाला मनुष्य साल में २) का खाद उस खेत को दे देता है। ठीक दो ही रुपये का खाद मिलता है या कुछ कमो-वेश, इसमें संदेह हो सकता है, पर इसमें ज़रा भी संदेह नहीं कि मलमूत्र

के संचय से खेत को फायदा तो जरूर होता है।

(३) यह सलाह तो किसी ने नहीं दी है कि मैला सीधा ज्यों-का-त्यों बतौर खाद के सभी फसलों के काम में आ सकता है। तात्पर्य यह है कि एक नियत समय के बाद मैला मिट्टी के साथ सुंदर खाद में परिणत हो जाता है। मिट्टी में गाड़ने के बाद मैले को कई प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है, तब कहीं जमीन जुताई और बुवाई के उपयुक्त होती है। इसकी अचूक कसौटी यह है कि जहां मैला गाड़ा गया हो उस जमीन को नियत समय के बाद खोदने पर अगर मिट्टी से कोई दुर्गंध न आती हो और उसमें मैले का नाम-निशान न हो, तो समझ लेना चाहिए कि उस जमीन में अब अन्न बोया जा सकता है। मैंने पिछले तीन साल इसी प्रकार मैले के खाद का उपयोग हर तरह की फसल के लिए किया है और इससे अधिक-से-अधिक लाभ हुआ है।

(४) इस बात को सभी विशेषज्ञ एक स्वर से मानते हैं कि शक्कर से गुड़ अधिक ताकतवर है; क्योंकि गुड़ में जो क्षार, विटामिन हैं वे शक्कर में नहीं हैं। जिस प्रकार मिल के पिसे-छने आटे से हाथ का पिसा बिना छना आटा, अथवा पालिशदार चावलों से बिना छंटा, बिना पालिश का चावल अच्छा होता है, उसी प्रकार शक्कर के मुकाबिले में गुड़ अच्छा होता है।

: १२ :

भय की भावना

अनेक ग्रामसेवक इस बात से बहुत भयभीत हो रहे हैं कि गांवों में अपने गुजर-बसर के लिए वे लोग क्या करेंगे ? उन्हें इस बात का बड़ा डर है कि यदि किसी संस्था या व्यक्ति से उन्हें खर्चा न मिला तो गांवों में कोई काम करके वे शायद ही अपना गुजारा कर सकें। यदि कहीं वे विवाहित हुए और कुटुंब का भार भी उन-पर हुआ, तब तो उन्हें और अधिक चिंता होती है; लेकिन मेरी राय में उनकी यह धारणा ठीक नहीं है। निस्संदेह यदि कोई आदमी शहरी मनोवृत्ति के साथ गांव में जाय और शहर की ही भांति वहां भी अपना रहन-सहन रखना चाहे तो उसके लिए वहां अपने गुजारे लायक कमाई करना असंभव ही है। उस दशा में तो वह तभी इतनी कमाई कर सकता है, जब कि शहरवालों की तरह वह ग्रामवासियों का शोषण करे; पर यदि कोई व्यक्ति किसी एक गांव में जा बसे और वहां गांववालों की ही भांति रहने की कोशिश करे तो अपने परिश्रम द्वारा अपनी गुजर करने में उसे कोई दिक्कत न होगी। उसे निज को इस बात का विश्वास होना चाहिए कि वे ग्रामवासी भी जब किसी-न-किसी प्रकार अपने गुजारे लायक कमा लेते हैं, जो बारहों महीनों बाप-दादों के वक्त से चले आये ढर्रे पर, अपनी बुद्धि का उपयोग किये बगैर, आंख

मूंदकर चलते हैं, तो वह भी कम-से-कम उतना तो कमा लेगा जितना कि औसत रूप से एक ग्राम-वासी कमा लेता है। ऐसा करते हुए वह किसी ग्रामवासी की रोजी भी नहीं मारेगा; क्योंकि गांव में वह उत्पादक बनकर जायगा, न कि दूसरों की कमाई पर गुलछर्रे उड़ानेवाला (परोपजीवी) बनकर।

पर गांव में जाने वाले ग्रामसेवक के साथ यदि उसका साधारण परिवार भी हो, तो उसकी पत्नी तथा परिवार के अन्य व्यक्तियों को चाहिए कि वे भी दिन-भर की मशक्कत करें। यह तो नहीं कहा जा सकता कि गांव में जाते ही कोई कार्यकर्त्ता गांववालों की तरह कड़ी मशक्कत करने लगेगा; लेकिन यदि वह अपनी हिचक और भय की भावना छोड़ दे तो यह जरूर है कि अपनी मेहनत की कमी की पूर्ति वह बुद्धिमत्ता-पूर्वक काम करने से कर लेगा। जबतक गांववाले उसकी सेवा की इतनी कद्र न करने लगें कि उसका सारा समय सेवा में ही लगने लगे तबतक वह उस अतिरिक्त उत्पत्ति में से बतौर कमीशन के कुछ पाने का पात्र होगा, जो कि उसके द्वारा प्रेरित उपायों के फलस्वरूप होने लगेगी: लेकिन ग्राम-उद्योग-संघ की देख-रेख में जो ग्राम-कार्य शुरू हुआ है उसका कुछ महीनों का अनुभव तो यह जाहिर करता है कि गांव-वालों में अपनी पैंठ तो बहुत धीरे-धीरे होगी और कार्यकर्त्ता को गांववालों के सामने अपने आचरण से

यह सिद्ध कर देना पड़ेगा कि श्रम और सदाचरण की दृष्टि से वह उनके लिए एक नमूना-रूप है। इससे उन्हें बड़ा सुंदर पाठ मिलेगा और यदि कार्यकर्त्ता गांववालों का संरक्षक बनकर अपनी पूजा कराने के बजाय उन्हींमें से एक बनकर अर्थात् उनके साथ हिलमिलकर रहेगा तो देर-सबेर उसका असर पड़े बिना नहीं रह सकता।

अब सवाल यह है कि जीविका के लिए गांव में कौन-सा काम किया जाय? उसे और उसके घरवालों को अपना कुछ-कुछ समय तो गांव की सफाई में लगाना ही होगा, चाहे गांववाले इसमें उसकी मदद करें या न करें। साधारण तौर पर दवा-दारू की जो सीधी-सादी मदद वह कर सकता है वह भी करेगा ही। इतना तो हरकोई कर सकता है कि कुनैन या इसी तरह की मामूली दवा बता दे, घाव या जख्म धोकर साफ कर दे, मैली आंखों व कानों को धो दे और घाव पर साफ मरहम लगा दे। मैं ऐसी किसी किताब की खोज में हूं जिसमें गांवों में हमेशा ही होने-वाली मामूली बीमारियों के लिए सरल-से-सरल उपाय व हिदायतें हों; क्योंकि कैसी भी हों, ये दोनों बातें तो ग्रामकार्य का मूल अंग होंगी ही; लेकिन इनमें ग्राम-सेवक का दो घंटे रोज से अधिक समय न लगना चाहिए। ग्राम-सेवक के लिए आठ घंटे का दिन जैसी कोई बात नहीं। ग्रामवासियों के लिए वह जो श्रम करता है वह तो प्रेम का श्रम है। इसलिए अपने

गुजारे के लिए, इन दो घंटों के अलावा, उसे कम-से-कम आठ घंटे तो लगाने ही होंगे। यह ध्यान रखने की बात है कि चर्खासंघ और ग्राम-उद्योग-संघ ने जो नई योजना बनाई है उसके अनुसार तो सब तरह के श्रम का कम-से-कम मूल्य या महत्व एक समान ही है। इस प्रकार जो धुनिया अपनी धुनही पर एक घंटा काम करके एक औसत से रूई धुनता है वह ठीक उतनी ही मजदूरी पायगा जितनी कि उतनी देर के अर्थात् एक घंटे तक निश्चित परिमाण में किये हुए काम के लिए किसी बुनकर, कतवैये या कागज बनानेवाले को मिलेगी। इसलिए ग्राम-सेवक अपनी इच्छानुसार कोई भी ऐसा काम चुन सकता है जिसे वह आसानी से कर सके, अलबत्ता यह खबरदारी हमेशा रखनी चाहिए कि काम ऐसा ही चुना जाय जिसके फलस्वरूप तैयार होनेवाला माल उसी गांव में या उसके आस-पास खप सके अथवा जिस माल की संघ को जरूरत हो।

इस बात की जरूरत तो हरेक गांव में है कि ऐसी कोई दुकान वहां हो, जहां से खाने-पीने की चीजें शुद्ध और वाजिब दामों पर मिल सकें। यह ठीक है कि दुकान चाहे कितनी ही छोटी हो, फिर भी उसके लिए थोड़ी-बहुत पूंजी तो चाहिए ही; लेकिन जो कार्यकर्त्ता अपने क्षेत्र में थोड़ा भी परिचित होगा उसकी ईमानदारी पर लोगों का इतना विश्वास तो होगा ही कि दुकान के लिए थोड़ा थोक माल उसे

उधार मिल जाय।

इस तरह के अब और उदाहरण देने की जरूरत नहीं है। जो सेवक सतत निरीक्षण की वृत्ति से काम करेगा, उसे नित-नई बातों का पता लगता ही रहेगा और जल्दी ही वह यह बात जान लेगा कि उसे कौन-सा ऐसा काम करना चाहिए जिससे उसका निर्वाह भी हो और जिन ग्रामवासियों की उसे सेवा करनी है उनके लिए वह आदर्श भी उपस्थित कर सके। अतएव उसे ऐसा कोई काम चुनना पड़ेगा जिससे ग्रामवासियों का शोषण न हो और न उनके आरोग्य या नैतिकता को ही धक्का लगे; बल्कि उन्हें अपनी फुर्सत के समय में हुनर उद्योग का कोई काम करके, अपनी बरायनाम आमदनी में कुछ वृद्धि करने की शिक्षा मिले। सतत निरीक्षण से उसका ध्यान उन चीजों की ओर जायगा, जो गांव में अकारण बर्बाद होती हैं—जैसे खेतों में फसल के साथ उग आने वाली घास-पात और दूसरी अपने-आप पैदा होनेवाली चीजें। बहुत जल्द उसे पता लग जायगा कि उनमें से अनेक तो बहुत उपयोगी हैं। उनमें से खाने अथवा अन्य उपयोग के लायक वनस्पतियों का वह चुनाव कर ले तो वह अपनी रोजी कमाने के ही बराबर होगा। मीराबहन ने मुझे तरह-तरह के पत्थर गांव से लाकर दिये हैं, जो देखने में संगमरमर-जैसे सुंदर लगते हैं और बड़े उपयोगी हैं। मुझे फुर्सत मिली तो शीघ्र ही मैं मामूली औजार से उन्हें तरह-तरह की शक्लों में तबदील करके बाजार

में बेचनेलायक बना दूंगा। काकासाहब ने बांस की सड़ी-गली खपच्चियों को, जो निकम्मी समझकर जलाई जाने वाली थी, एक मामूली से चाकू के सहारे कागज़ काटने के चाकुओं और लकड़ी के चम्मचों में परिणत कर दिया, जिन्हें बाजार में एक हद तक बेचा भी जा सकता है। मगनवाड़ी में कुछ लोग अपने फुर्सत के समय का उपयोग रद्दी कागजों के, जो कि एक तरफ कोरे होते हैं, लिफाफे बनाने में करते हैं।

दरअसल बात यह है कि गांववाले अब बिल्कुल निराश हो चुके हैं। जिस किसी भी अजनबी को वे देखते हैं, उन्हें यही खयाल होता है कि वह उनका गला दबाने और उनका शोषण करने के लिए आया है। बुद्धि और श्रम का संबंध-विच्छेद हो जाने से, अर्थात् उनमें बुद्धि-शक्ति न होने से उनकी विचार-शक्ति कुंठित हो गई है। काम के समय का भी वे सर्वोत्तम उपयोग नहीं करते। ग्राम-सेवक को चाहिए कि ऐसे गांवों में वह अपने हृदय में प्रेम और आशा भरकर जाय। उसे अपने तईं इस बात का विश्वास रखना चाहिए कि जहाँ विवेक-हीनता से काम करके स्त्री-पुरुष साल में ६ महीने बेकार बैठे रहते हैं वहाँ वह पूरे साल विवेक-पूर्वक काम करेगा तो निश्चय ही वह ग्रामवासियों का विश्वासपात्र बन जायगा और उनके बीच परिश्रम करता हुआ ईमानदारी के साथ अपने निर्वाह लायक कमाई कर सकेगा।

"लेकिन मेरे बाल-बच्चों और उनकी पढ़ाई-

लिखाई का क्या होगा ?" यह बात ग्राम-सेवा का इच्छुक ग्राम-सेवक पूछता है। पर बच्चों को आधुनिक ढंग की शिक्षा देनी हो तो मैं कोई ऐसी बात नहीं बता सकता जो कारगर हो। हां, यदि उन्हें स्वस्थ, मजबूत, ईमानदार और समझदार ग्रामवासी बनाना काफी समझा जाय, जिससे कि जब चाहें तब गांवों में वे अपनी रोजी कमा सकें, तो उन्हें सब कुछ शिक्षा अपने मां-बाप की छत्र-छाया में ही मिल जायगी; और उसके साथ-साथ, जैसे ही वे सोचने-समझने लायक उम्र को पहुचेंगे और अपने हाथ-पैरों का ठीक-ठीक उपयोग करने लग जायंगे, वैसे ही अपने परिवार में वे थोड़ी-बहुत कमाई भी करने लगेंगे। सुघड़ घर के समान कोई स्कूल नहीं हो सकता, न ईमानदार सदाचारी माता-पिता के समान कोई अध्यापक। आधुनिक माध्यमिक शिक्षा तो गांववालों पर व्यर्थ का एक बोझ है। उनके बच्चे कभी भी उसे ग्रहण नहीं कर सकेंगे—और ईश्वर की कृपा है कि सुघड़ घरेलू शिक्षा उन्हें प्राप्त हो तो उससे वंचित भी हर्गिज नहीं होंगे। ग्राम-सेवक या सेविका में सुघड़ता न हो, सुघड़ घर चलाने की शक्ति न हो तो उसके लिए ग्राम-सेवा का सौभाग्य या सम्मान पाने का लोभ न रखना ही भला है।

मंडल का

गांधी-साहित्य : गांधीजी-लिखित

प्रार्थना-प्रवचन—भाग १ और २	७.५०
गीता-माता	५.००
पन्द्रह अगस्त के बाद	२.५०
धर्म-नीति	२.५०
दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह	४.५०
मेरे समकालीन	६.००
आत्मकथा (सम्पूर्ण), सजिल्द	५.००
आत्मकथा (संक्षिप्त)	१.१०
आत्म-संयम	५.००
गांधी-विचार-रत्न	३.५०
अनासक्तियोग	१.००
आज का विचार (दो भाग)	१.००
आश्रमवासियों से	०.४०
एक सत्यवीर की कथा	०.३०
गांधी-शिक्षा (तीन भाग)	०.६२
बापू की सीख	१.००
गीता-बोध	१.००
ग्राम-सेवा	१.००
नीति-धर्म	०.५०
ब्रह्मचर्य—भाग १ और २	२.५०
मंगल-प्रभात	०.५०
सर्वोदय	०.५०
हिन्द-स्वराज्य	१.२५
हृदय-मंथन के पांच दिन	०.४०
देश-सेवकों के संस्मरण	१.५०
अगर मैं डिक्टेटर होता	०.३०
शराबबन्दी करें	०.३०
स्वराज में अछूत कोई नहीं	०.३०

मंडल का
गांधी-विचार-साहित्य

गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव		२५.००
गांधी : संस्मरण और विचार		३०.००
गांधीजी की देन	(राजेन्द्रप्रसाद)	२.००
राष्ट्रपिता	(जवाहरलाल नेहरू)	२.५०
मेरे हृदयदेव	(हरिभाऊ उपाध्याय)	३.००
गांधी-विचार-दोहन	(कि० घ० मशरूवाला)	२.००
गांधीजी और उनके सपने	(वियोगी हरि)	१.००
अहिंसा की शक्ति	(रिचर्ड बी० ग्रेग)	१.७५
जीवन-प्रभात	(प्रभुदास गांधी)	७.००
बा, बापू और भाई	(देवदास गांधी)	०.५०
डायरी के कुछ पन्ने	(घनश्यामदास बिड़ला)	१.२५
बापू के पत्र	(संपादक-काका कालेलकर)	४.५०
बापू के आश्रम में	(हरिभाऊ उपाध्याय)	१.२५
श्रद्धाकण	(वियोगी हरि)	१.००
गांधीवादी संयोजन के सिद्धांत	(श्रीमन्नारायण)	५.००
स्वतंत्रता की ओर	(हरिभाऊ उपाध्याय)	४.५०
सर्वोदय की बुनियाद	,,	१.००
बापू की कारावास-कहानी	(सुशीला नैयर)	१२.००
सर्वोदय-योजना		०.५०
विनोबा के जंगम विद्यापीठ में	(कुंदर दिवाण)	२.५०
बापू-स्मरण (अजिल्द)		४.००
गांधी : एक जीवनी (सजिल्द)	(बी० नन्दा)	५.००
अहिंसा की कहानी	(यशपाल जैन)	१.७५
गांधीजी का जीवन-प्रभात	(अशोक)	१.००

गांधीजी की अन्य पुस्तकें